मरीया मोन्तेस्स्सोरी

जीवनी एवं शिक्षा–दर्शन

संजीव मिश्र

मरीया मोन्तेस्सोरी का नाम बहुत सारे लोग जानते हैं, उनके नाम की स्कूलें भी हर गली–कूचे में दिखाई दे जाती हैं मगर उनके जीवन और दर्शन पर हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक आज तक उपलब्ध नहीं थी जो सर्वथा पठनीय हो और मननीय भी। संजीव मिश्र की लिखी यह पुस्तक हिन्दी शिक्षा जगत् में एक घटना है। एक उपलब्धि है। एक अनोखा उपहार है उन तमाम जिज्ञासु लोगों के लिए जो मां मोन्तेस्सोरी के जीवन और दर्शन को समझना, जानना चाहते हैं। ऐसी पुस्तक का प्रकाश में आना एक खबर है, ताजा और सुखदायी खबर। जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा वह स्वयं तो धन्य होगा ही मगर साथ में मां मोन्तेस्सोरी के विचारों का वत्सल–आलोक उसके घर–आंगन में हौले से पसर जायेगा। इस आलोक से रोशन होगी उस घर की सारी सन्तति और आने वाली हर पीढ़ी। तो यह अनोखा उपहार हर घर के लिए है, हर शिक्षक के लिए है और हर विद्यालय के लिए एक अत्यन्त अनिवार्य पुस्तक। सर्वथा संग्रहणीय।

मरीया मोन्तेस्सोरी
जीवनी एवं शिक्षा-दर्शन

लेखक
संजीव मिश्र

संपादन
रमेश थानवी

उन तमाम बच्चों के नाम
जिनकी आँखों की चमक में
यह पुस्तक अपना अर्थ पायेगी

प्रकाशकीय

मेरा गाँव राजलदेसर चूरू जिले का एक छोटा-सा गाँव था—साठ-सत्तर बरस पहले। अब यह एक छोटा मगर साधन सम्पन्न कस्बा कहा जा सकता है। तब यह एक अभावग्रस्त गाँव था। शिक्षा के अच्छे साधन भी सुलभ नहीं थे। कई बरस तक यहाँ हम सभी साथी मामूली सुविधाओं के साथ शिक्षित हुए। तब बचपन से ही एक प्रबल संकल्प जागा था कि अपने गाँव में कभी शिक्षा के अच्छे साधन जुटाएँगे। अच्छा स्कूल होगा, कॉलेज होगा, पुस्तकालय होगा आदि-आदि।

लगभग 50-55 बरस पहले मैं स्वयं जब भामरा साहब से मोन्तेस्सोरी शिक्षा पद्धति का प्रशिक्षण लेकर निकला तो बचपन के प्रति एक नया अनुराग जगा था। उत्साहदायी सपने देखने लगे थे हम। गाँव में उन्हीं दिनों अभिनव बाल भारती की स्थापना कर दी थी। वह स्कूल आज भी चल रहा है। समय लगा मगर अब काफी सुविधाएँ बालकों को सुलभ हैं।

इस बीच मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति की स्थापना की। माँ मोन्तेस्सोरी के प्रति मन में अमित श्रद्धा जागी थी। वे पूरी दुनिया में बचपन के लिए एक आशा बन कर उभरी थीं। हमारे जैसे लाखों लोगों का नजरिया बदल दिया था, जीवन बदल दिया था। हम उस अनंत वत्सला माँ के चिर ऋणी हो गये थे।

इसी ऋण से किंचित उऋण होने के प्रयास में एक विनम्र पहल हमने की थी माँ मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति खोल कर। इस समिति ने सबसे पहले गिजुभाई बधेका के सम्पूर्ण बाल शिक्षा दर्शन की 17 पुस्तकों का प्रकाशन किया था। गिजुभाई हमारे कहीं ज्यादा करीब थे। उनकी रचनाएँ भी पिछले तमाम बरसों में हमें अनुप्राणित करती रहीं थीं। हम उनके ऋणी रहे हैं। उनकी 17 पुस्तकों का हिन्दी में सामान्य-सी कीमत पर प्रकाशन थोड़ा-सा कर्जा उतार देने का सिर्फ एक प्रयास मात्र था।

अब हम मरीया मोन्तेस्सोरी की सभी महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के प्रकाशन का काम हाथ में ले रहे हैं। यह काम भी हम अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा के साथ थोड़ा-सा कर्जा चुकाने के भाव से कर रहे हैं।

जब हमने यह काम हाथ में लिया तो अनुभव किया कि मरीया मोन्तेस्सोरी के जीवन और शिक्षा दर्शन को समझने के लिए अब तक कोई भी सुचिन्तित एवं सुलिखित पुस्तक उपलब्ध ही नहीं है। हमारी इस योजना के प्रधान सम्पादक रमेश थानवी का सुझाव था कि हमें ऐसी पुस्तक लिखवानी चाहिए। थानवीजी ने ही श्री संजीव मिश्र से सम्पर्क किया और यह पुस्तक तैयार हुई। यह एक श्रमसाध्य काम तो था ही मगर कोई दृष्टिवान् सर्जक ही इसे सम्पन्न कर सकता था। संजीवजी ने पूरी सूझ-बूझ से यह पुस्तक तैयार की और आज यह पाठकों के हाथों में है।

इस बीच एक अनचीती दुर्घटना घटी कि संजीव ही नहीं रहे। 46 वर्ष की कच्ची उम्र में उनका जाना हमें गहरे विषाद से भर गया। हम श्रद्धावनत हुए संजीव की इस नायाब कृति को हिन्दी पाठकों के हाथों में सौंप रहे हैं।

मैं आभारी हूँ भाई रमेशजी थानवी का जिनके प्रयास से यह प्रकाशन सम्भव हो पाया है और साथ ही सांखला प्रिंटर्स के भाई दीपचन्द सांखला का जो इस पुस्तक के मुद्रण में हमारे सहयोगी बने हैं। कलाकार रामकिशन अडिग ने इसकी सुरुचिपूर्ण प्रस्तुति में हमें सहयोग दिया है। उनके भी हम आभारी हैं। विश्वास है यह कृति शिक्षाप्रेमी पाठकों को मनभावन लगेगी। वही हमारे तोष का विषय होगा और ममतामयी माँ मोन्तेस्सोरी के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि भी।

—कुंदनमल बैद

सचिव

मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर (चूरू), राजस्थान

क्रम

ताकि फूल खिले रहें, खिलते रहें....

बात सौ बरस पुरानी है। उससे भी कहीं ज्यादा। मगर पुरानी कभी होगी नहीं। न बोदी होगी और न बासी। आज भी अपनी जीवन-साधना का दीया हाथ में लिये खड़ी है ममतामयी मां मोन्तेस्सोरी। यह दीया लाखों-करोड़ों बच्चों के चेहरों को ही नहीं, उनके जीवन को रोशन करने के लिए अखंड जोत की तरह जल रहा है। ममतामयी मां मोन्तेस्सोरी की वैचारिक एवं भाव-प्रवण अग्नि अपने समूचे वात्सल्य के साथ इस दीये को जलाये रख रही है। यह ज़ोत जल रही है कि कल कोई बालक बेसहारा न रहे। लाचार बन कर न जीये। निराशा और कुंठा के भंवरजाल में फंस कर हतोत्साहित न हो जाये। मुरझा ना जाये। यह जोत जल रही है कि कल की दुनिया में बालकों रूपी फूलों की रंग-बिरंगी क्यारियां आबाद रहें। फूल खिले रहें और खिलते रहें।

मरीया मोन्तेस्सोरी का जीवन एक साधना था। एक संघर्ष था। एक तपस्या थी। इटली में जन्म लिया था मरीया मोन्तेस्सोरी ने। इटली एक पश्चिमी देश है, मगर तब वहां पर भी एक लड़की का डॉक्टर बनना बहुत दूभर था। दूभर ही नहीं, वर्जित था। ऐसी वर्जनाओं के बावजूद अपने बूते पर मरीया ने डॉक्टरी की पढ़ाई में दाखिला लिया था। दाखिला ले लिया तो मुश्किल यह कि बिना किसी प्रोफेसर की देखरेख के अकेले, किसी चिराग की रोशनी में मुर्दा शरीरों को चीर कर शरीर के अंगों को समझने का काम उसे अकेले ही करना पड़ता था। कई बार घोर हताशा होती थी मगर संकल्प की दृढ़ता थी कि मोन्तेस्सोरी डॉक्टर बन गयी।

मन में मनुष्य-समाज की सेवा का संकल्प था इसलिए डॉक्टर तो बन गयी थी मरीया, मगर मन में एक नयी करुणा जाग गयी थी। करुणा के पात्र थे बेसहारा विमंदित बच्चे। दिमागी तौर पर
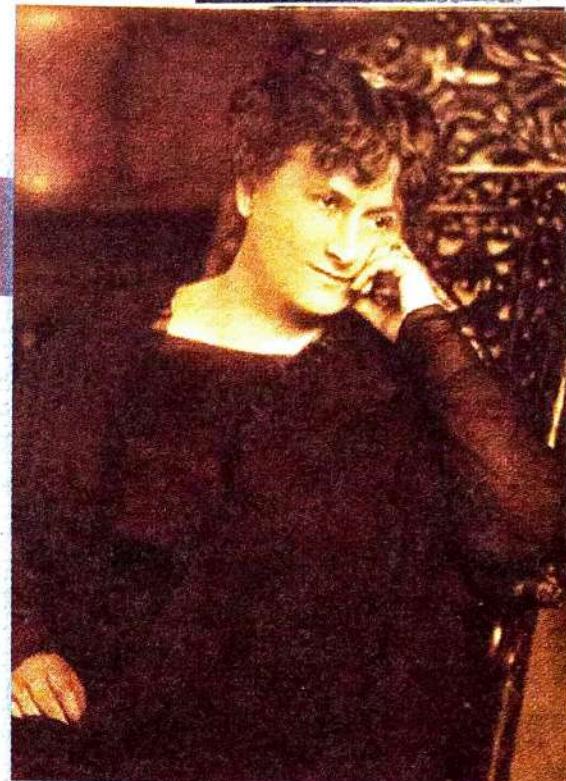
कमजोर अथवा लाचार बच्चे। इनकी लाचारी मरीया से देखी नहीं गयी थी। उसने इनका जीवन आसान बनाने की ठान ली थी। जो ठाना सो होना ही था क्योंकि अपने संकल्प में सिद्ध थी मरीया। डॉक्टरी पढ़ने के बाद उसने नये सिरे से विमंदित बच्चों को पढ़ाने की शिक्षा ली थी। फिर से विधिवत सीखा था और सेवा में जुट गयी थी।

मरीया ने दिमागी तौर पर कमजोर बच्चों को सहजता, सरलता से और बिना किसी दबाव के, सिखाने के कुछ तरीकों की खोज की थी। ये तरीके उसके काम से और उसकी करुणा से उपजे थे। ये तरीके लाचार बच्चों के जीवन को सरस बनाने के तरीके थे। मरीया का यह विश्वास था कि शिक्षा का कोई भी सच्चा काम जीवन को सरस बनाता है, जीवन में नयी उमंग भरता है और पूरी आजादी के साथ उसे लहलहाने का अवसर देता है।

मरीया का विश्वास था कि शिक्षा के किसी भी काम का अर्थ बालकों के करीब आना है, उनको जानना है और बचपन को उसकी संपूर्णता के साथ अन्वेषित करना है। मरीया शिक्षा के काम को सीखने की उन्मुक्तता का अवसर मानती थी। उनके अनुसार बालकों को सिखाना हमारा काम नहीं है अपितु सीखने का खुला अवसर देना हमारा काम है। शिक्षक सीखने के इस अवसर में सहयोगी बनता है। वह बालकों को साधन सुलभ करवाता है तथा उनके उपयोग में उनका सहयोग करता है। बालक के लिए किसी भी चीज को सीख लेना किसी शिखर पर विजय हासिल करने जैसा होता है। सीख लेने का छोटे से छोटा अनुभव बालक को नयी प्रफुल्लता देता है। उसे उमंग और उत्साह से भर देता है। तब वह एक उजले भविष्य के प्रति आश्वस्त हो जाता है। मरीया मोन्तेस्सोरी की पूरी जीवन–साधना बालकों को इसी उजले भविष्य के प्रति आश्वस्त करने की साधना थी।
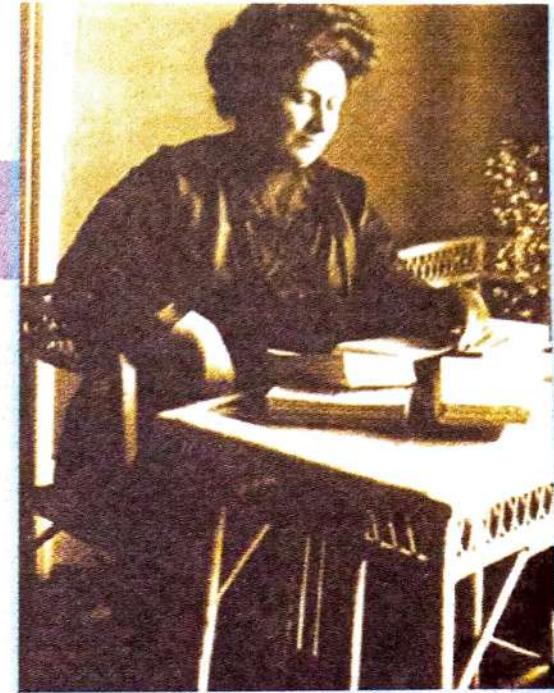
दिमागी तौर पर कमजोर बच्चों को सीखने का अवसर देते–देते मरीया का ध्यान सामान्य बच्चों की ओर भी गया था। उन बच्चों की ओर भी, जो शिक्षा के अवसरों से वंचित थे और एक दूसरी तरह की उपेक्षा के शिकार थे। गरीब और मजदूर मां–बापों के बच्चों की शिक्षा का बीड़ा भी मरीया ने उठाया था। वह विमंदित बच्चों के साथ किये गये पूर्व–प्रयोगों के अनुभव का लाभ लेना चाहती थी। वे अनुभव यहां भी काम आ रहे थे। मगर सबसे बड़ी बात यह है कि मरीया बालकों के साथ काम करती हुई बच्चों से उनकी शिक्षा के तरीके सीख रही थी।

मरीया दरअसल बचपन को अन्वेषित कर सकी थी। बचपन के वास्तविक स्वरूप को पूरी इंसानियत के सामने उघाड़ कर पेश कर सकी थी। यही वजह थी कि पूरे विश्व में मरीया मोन्तेस्सोरी की शिक्षा पद्धति एक आशा और उम्मीद के रूप में उभरी थी। पहले यह बचपन का एक दर्शन (फिलॉसॅफी अव् चाइल्डहुड) था और बाद में बालकों की शिक्षा का सुचिंतित एवं संपूर्ण दर्शन था (ए होलिस्टिक फिलॉसॅफी अव् चाइल्ड एज्यूकेशन)। इस बाल–शिक्षा–दर्शन ने शिक्षा को नये आधार दिये थे। नये आयाम दिये थे। पूरे विश्व में शांति और भाईचारा उनकी शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य थे। मोन्तेस्सोरी के इस दर्शन की नींव उनके अपने सुदीर्घ अनुभव व बालकों के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा बालकों से उनके सीधे संबंधों पर टिकी थी।

हमें प्रसन्नता है कि इस जीवन–साधना की सांगोपांग झांकी इस छोटी–सी पुस्तक में हम पेश कर पा रहे हैं। प्रसन्नता है जरूर, मगर मन में कहीं गहरा विषाद भी छाया है। विषाद इसलिए कि इस पुस्तक को हम **संजीव** के रहते प्रकाशित नहीं कर सके। ऐसी अनहोनी कोई सोच भी कैसे सकता है कि दीखने में पूरी तरह से स्वस्थ कोई नौजवान भाई सिर्फ 46 बरस की उम्र में खड़ा–खड़ा चल बसेगा....! यह एक अत्यंत दुखद दुर्घटना है हमारे जीवन की भी, मगर होनी पर किसका बस है!

बिलख कर रह जाने के अलावा हम कर भी क्या सकते हैं। हां, सच्ची प्रसन्नता हमें तभी होती जब **संजीव** स्वयं इसे पुस्तकाकार देखते।

मन में कहीं थोड़ा–सा संतोष है तो बस यही कि यह पुस्तक राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर की मासिक पत्रिका **'अनौपचारिका'** में क्रमशः प्रकाशित हो गयी थी–**संजीव** के सामने। **संजीव** ने मेरे अनुरोध को स्वीकारा। इस पुस्तक को लिखकर मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर पर और मुझ पर व्यक्तिगत रूप से जो उपकार किया, उसके लिए मैं उनका ऋणी हूं।

मरीया मोन्तेस्सोरी की मूल पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की पहल मोन्तेस्सोरी बाल शिक्षण समिति, राजलदेसर ने करने का जो महत् निर्णय लिया है वह सर्वथा स्वागत योग्य तो है ही, मगर इस पुस्तक के बिना उन तमाम पुस्तकों के प्रकाशन का यज्ञ अधूरा रहता। हम कह सकते हैं कि यह पुस्तक न केवल उन तमाम पुस्तकों का पुरोवाक् है, बल्कि इस क्षत–विक्षत दुनिया को मोन्तेस्सोरी से परिचित करा देने का महत् कार्य भी यह पुस्तक कर रही है। आज जब पूरी दुनिया इंसानियत के तमाम उसूलों के प्रति अंधा कर देने वाली प्रगति की दौड़ में शरीक हो गयी है तो बच्चे इस अंधी–दौड़ के पहले शिकार हैं। वे आज सबसे अधिक प्रताड़ित, पीड़ित व उपेक्षित हैं। ऐसी स्थिति में मोन्तेस्सोरी फिर से उम्मीद बन कर उभरती हैं। आज की दुनिया की वे जरूरत हैं। ऐसे समय में उनके जीवन–परिचय व शिक्षा–दर्शन का प्रकाश में आना एक पुण्य कार्य है।

—रमेश थानवी

40/97, स्वर्ण पथ, मानसरोवर, जयपुर

संघर्ष

अंधेरा घिर रहा था। उस विशाल इमारत में कोई नहीं था। कमरे–बरामदे सूने पड़े थे। बस, एक बड़े-से हॉल में धीमी–पीली रोशनी फैली थी। हॉल में इधर–उधर लम्बी–ठंडी लोहे की ट्रॉलियों पर लाशें पड़ीं थीं। एक अकेली लड़की, कोई बाईस साल की, नश्तर लिए धीमे–धीमे एक लाश की चीरफाड़ कर रही थी। उसके भीतर झांकती, शरीर की बनावट को ध्यान से समझती, एक कॉपी में नोट्स ले रही थी। उसकी आंखों में रह–रह कर आंसू उमड़ रहे थे। दुःख के नहीं। न ही भय के। बल्कि क्रोध और निराशा के।

मेडिकल कॉलेज के छात्र दिन में शवों की चीरफाड़ करके शरीर का अध्ययन करते। भरी–पूरी कक्षा में। प्रोफेसरों के कुशल निर्देशन में। लेकिन **मरीया** को इसकी इजाजत नहीं थी। क्योंकि वह लड़की थी।

मैं क्या बनूंगी, मुझे पता है

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में इटली तो क्या, शायद पूरे यूरोप में किसी ने किसी औरत के डॉक्टर होने की कल्पना भी नहीं की थी। औरतों का काम था घर संभालना। आधुनिक युग की शुरुआत में, बहुत हुआ तो औरतों को अध्यापन का पेशा अपनाने की छूट मिली। माना जाता था कि बच्चों को सिखाना औरत का नैसर्गिक गुण है। लेकिन औरत डॉक्टर? यह तो किसी भी तरह स्वीकार करने लायक बात नहीं थी।

लेकिन **रेनील्डे** तथा **कर्नल एलेसान्द्रो मोन्तेस्सोरी** की पुत्री **मरीया** कोई मामूली लड़की नहीं थी। उसे बचपन से ही स्कूल और पढ़ना–पढ़ाना बहुत उबाऊ और बेकार का काम लगता था। वह कुशल थी। कुशाग्र थी। स्कूली पढ़ाई पूरी करके उसने तय किया था कि वह कुछ करेगी।

कुछ भी करेगी, पर टीचर नहीं बनेगी। टीचर बनने जैसा बेमतलब काम उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं था। उसने तय किया कि वह डॉक्टर बनेगी।

स्वाभाविक तौर पर माना जाता था कि बच्चों, बीमारों, घायलों और वृद्धजनों की सेवा के लिए औरतों में संवेदनशीलता होती है और नर्स का काम वे बखूबी कर सकती हैं। लेकिन एक उच्चकुलीन लड़की के लिए यह पेशा भी सम्माननीय नहीं माना जाता था। शरीरविज्ञान का अध्ययन, चीरफाड़, दवाओं और रसायनों का अध्ययन, बीमारियों के लक्षण, उपचार आदि काम तो निश्चय ही औरत के 'कोमल–संवेदनशील दिमाग' के बस के बाहर की चीज थे।

मरीया को हर तरह का विरोध सहना पड़ा। सबसे बड़ा विरोध तो खुद उसके घर में हुआ। पिता कुछ सुनने को तैयार नहीं थे। परिचित, रिश्तेदार, अध्यापक आदि ऐसे हंसी उड़ाते थे मानो वह कोई परीकथा सुना रही हो। लेकिन **मरीया** ने ठान लिया तो ठान लिया। यह कोई यूं ही ले लिया गया फैसला नहीं था। शुरू में **मरीया** ने तय किया था कि वह गणित में तेज है, इसलिए इंजीनियर बनेगी। इस बात को भी किसी ने गंभीरता से नहीं लिया। फिर भी उसने गणित और यांत्रिकी की कक्षाओं में जाना शुरू कर दिया। जैसी कि सबको उम्मीद थी, जल्दी ही निष्प्राण सैद्धांतिक गणित और भौतिकी से **मरीया** का मन ऊब गया। इन विषयों की पढ़ाई में कुछ महिलाएं थीं, जो ज्यादातर पढ़–लिख कर गणित और विज्ञान की अध्यापिकाएं बनती थीं। लेकिन **मरीया** इंजीनियर बनने की इच्छा से पढ़ रही थी और उसे लगने लगा था कि असल में तो उसकी रुचि जीवविज्ञान और चिकित्साशास्त्र में है।

दृढ़ निश्चय, जिद्द और संकल्प की प्रतिमूर्ति **मरीया** ने जैसे–तैसे शिक्षा बोर्ड के प्रमुख **डॉ. बचेली** से मुलाकात का वक्त ले लिया। उन्होंने बड़े ध्यान से **मरीया** की बातों को सुना और फिर

कहा, **मुझे दु:ख है कि डॉक्टरी की पढ़ाई लड़कियों के लिए कतई असंभव है। मरीया** उठ खड़ी हुयी। विनम्रता से उन्हें मुलाकात के लिए धन्यवाद दिया। हाथ मिलाया और विदा होते समय दृढ़ता से धीमे स्वर में बोली, **लेकिन मुझे पता है कि मैं चिकित्साशास्त्र की ही एक डॉक्टर बनूंगी**। कह कर वह बाहर चली आयी।

जितना फूंकोगे, उतनी ऊंची उड़ूंगी

तमाम विरोधों से जूझती **मरीया** को आखिरकार रोम के मेडिकल कॉलेज में दाखिला मिल ही गया। पूरे इटली में वह पहली लड़की थी जिसे मेडिकल कॉलेज में दाखिला मिला था। उसके नाराज पिता ने उससे बोलना छोड़ दिया और घर से निकाल दिया। लेकिन अपनी योग्यता के बल पर **मरीया** ने लगातार कोई–न–कोई छात्रवृत्ति हासिल की। साथ ही प्राइवेट ट्यूशन करके भी वह कुछ धन कमा लेती और इस तरह से पढ़ाई और जीवनयापन, दोनों के खर्च जुटा लेती। लेकिन मेडिकल कॉलेज में दाखिला **मरीया** के संघर्ष की शुरुआत–भर था।

मेडिकल कॉलेज के पुरुष छात्रों को **मरीया** की अपने बीच मौजूदगी कतई बर्दाश्त नहीं थी। उन्हें लगता था मानो उनके एकाधिकार पर ऐसा अतिक्रमण उनका अपमान है। वे तरह–तरह से **मरीया** को नीचा दिखाने और हतोत्साहित करने के प्रयास करते। लेकिन जल्दी ही वे जान गये कि **मरीया** आम औरतों की तरह नहीं है। उसके भीतर फौलादी दृढ़ता और तराशे हुए हीरे जैसी प्रतिभा मौजूद है। **मरीया** पूरे वक्त एक हंसमुख रवैया अपनाए रहती और अपने ऊपर होने वाली टीका–टिप्पणी को बेपरवाही से अनसुना करती रहती। कॉलेज के गलियारों में जब पास से गुजरते हुए पुरुष छात्र हिकारत से उसे देख कर 'फुहऽऽऽ' कहते तो **मरीया** हंसकर जवाब देती,

फूंको दोस्त। और जोर से फूंको। तुम जितना जोर से फूंकोगे मैं उतनी ही ऊंचाई पर उड़ूंगी।

उन दिनों को याद करते हुए बाद में **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने कहा था, **मुझे लगता था कि मैं जो चाहूं सो कर सकती हूं। कुछ भी असंभव नहीं है**। वास्तव में **मरीया** के लिए परेशानियां बनी ही इसलिए थीं कि उन पर काबू पाया जा सके।

आस्था का संचार

एक दिन जब पूरा रोम भयंकर आंधी और बरसात की चपेट में था, मेडिकल कॉलेज के एक बड़े प्रोफेसर व्याख्यान देने हॉल में पहुंचे। उन्होंने पाया कि हॉल में केवल एक विद्यार्थी मौजूद है। **मरीया** आंधी और बरसात के बावजूद जैसे–तैसे कॉलेज पहुंची थी। उसने प्रोफेसर से कहा कि चूंकि बाकी लोग नहीं आ पाये हैं इसलिए व्याख्यान अगले किसी दिन के लिए टाल दिया जाए। लेकिन प्रोफेसर ने कहा कि जिस विद्यार्थी में ऐसी लगन और समर्पण है, उसे शिक्षा से वंचित रखना अन्याय होगा। और उस दिन उस विद्वान प्रोफेसर ने जीवन में पहली और आखिरी बार अपना महत्त्वपूर्ण व्याख्यान केवल एक श्रोता के सम्मुख पूरे मनोयोग से दिया।

धीरे–धीरे **मरीया** न केवल शिक्षकों का स्नेह प्राप्त करने में सफल हुई, बल्कि पुरुष छात्रों में भी उसके प्रति एक ईर्ष्याभरा सम्मान जागने लगा। पर कुछ समस्याएं तो थीं ही। परिवार और पिता के विरोध जैसे हालात के अलावा उस समय के पुरुषवादी समाज में कई और बंधन भी थे। जैसे कि उस समय किसी पुरुष की मौजूदगी में किसी महिला द्वारा एक नग्न शव की चीरफाड़ और अध्ययन करना सोचा भी नहीं जा सकता था।
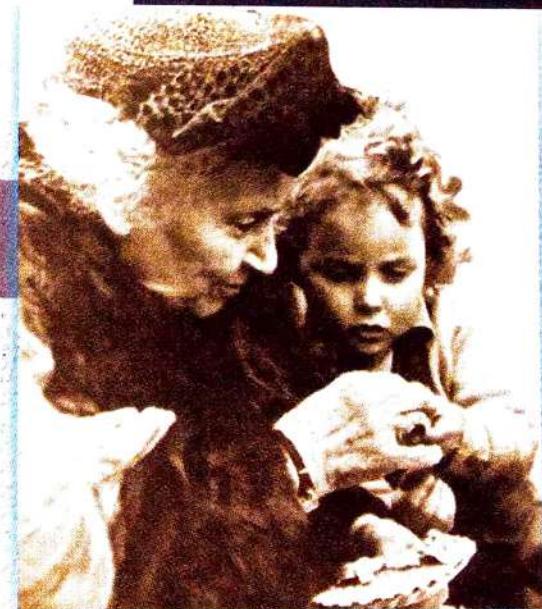
लिहाजा **मरीया** को कॉलेज खत्म होने के बाद, सूने माहौल में अकेले शवों की चीरफाड़ करनी होती थी। ऐसी परिस्थिति में अच्छे से अच्छे मनुष्य का घबरा जाना और मनहूसियत–भरे अवसाद में घिर जाना स्वाभाविक था। और अपने सारे दृढ़ निश्चय और प्रतिभा के बावजूद अंततः **मरीया** एक इंसान ही थी। एक बाईस साल की लड़की। निजी, सामाजिक, पारिवारिक, मनोवैज्ञानिक, भावात्मक दबावों और तनावों को सहने की भी एक सीमा होती है। उस सीमा पर पहुंच कर किसी की भी हिम्मत टूटने लगती है।

मरीया के साथ भी यही हुआ। उस ढलती शाम वह शवों की चीरफाड़ करते–करते गहरे अवसाद और निराशा से घिर गयी। क्षोभ में डूबी **मरीया** ने अपना सामान समेटा और कॉलेज से निकल कर घर चल दी। मन में सोच लिया था कि, बहुत हुआ। अब आगे करना बस की बात नहीं है।

अंधेरा घिरते रास्ते पर उदासी से घिरी **मरीया** चली जा रही थी। रास्ते में पिन्सियो पार्क पड़ता था। वहां से गुजरते हुए **मरीया** को एक भिखारिन मिली। चिथड़ों में लिपटी। भीख मांगती हुयी। उसके साथ में एक दो साल का बच्चा भी था। भिखारिन अपनी रटी–रटायी आवाज में भीख मांग रही थी। बच्चा पास ही बैठा एक रंग–बिरंगे कागज के टुकड़े से खेलने में मगन था। उसे मानो दुनिया से कोई वास्ता नहीं था। वह अपने उस अनूठे खजाने में डूबा अद्भुत आनंद में खिला हुआ था। उसकी आंखों और चेहरे पर एक ऐसी चमक थी जिसका मुकाबला कोई खुशी, कोई उपलब्धि नहीं कर सकती। **मरीया** की नजर बच्चे के चेहरे पर पड़ी और उसे कुछ ऐसा अनुभव हुआ, जो वर्णन के परे है।

बच्चे की निश्छलता से सहज साक्षात्कार न जाने कैसे, **मरीया** के भीतर छुपे एक महान उद्देश्य का आत्म–साक्षात्कार बन गया। उस समय वह कुछ समझ नहीं पायी। लेकिन अचानक

स्पष्ट हो गया कि उसके जीवन का कोई बड़ा उद्देश्य है। वह कुछ महान काम करने के लिए जन्मी है। निराशा और पलायन का उसके जीवन में कोई स्थान नहीं है। **मरीया** मुड़ी और कॉलेज लौट आयी। देर रात तक बिना किसी निराशा या क्षोभ के शवों की चीरफाड़ करती रही। उसके मन में एक नयी रोशनी और गहरी आस्था जन्म ले चुकी थी। उसे पता चल गया था कि उसके संकल्प के पीछे कोई गहरा कारण मौजूद है।

सफलता और स्वीकृति

अपने संकल्प के कारण पिता से हुयी अनबन का भी अप्रत्याशित और सुखद अंत हुआ। हालांकि पिता **मरीया** को नाराज होकर छोड़ चुके थे, उसकी मां **रेनील्डे** को हमेशा से बेटी की क्षमता पर गहरा विश्वास था। वे न केवल उससे मिलती रहीं, बल्कि जब, जैसे बन पड़ा, उसकी मदद भी करती रहीं।

एक दिन पिता **एलेसान्द्रो मोन्तेस्सोरी** की मुलाकात बाजार में एक मित्र से हुयी। मित्र ने पूछा, 'अरे, आप भाषण सुनने नहीं जा रहे हैं?' **एलेसान्द्रो** ने पूछा, 'कौनसा भाषण?' मित्र ने बताया कि हर साल डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी करने वाले युवकों को पूरे कॉलेज तथा प्रमुख विद्वानों के सम्मुख चिकित्सा विज्ञान से संबंधित किसी विषय पर एक भाषण देना होता है और उस दिन इटली की पहली मेडिकल छात्रा **मरीया** का भाषण है। मित्र का आग्रह था कि नाराजगी छोड़कर **एलेसान्द्रो** को बेटी के जीवन के इस महत्त्वपूर्ण अवसर पर जरूर चलना चाहिए।

बेमन से ही **एलेसान्द्रो** भाषण सुनने पहुंचे। हॉल खचाखच भरा हुआ था। एक लड़की के प्रति संदेह और अविश्वास की तरंगें मानो माहौल को थपेड़े दे रही थीं। **मरीया** स्टेज पर आयी। भाषण शुरू किया। विषय पर उसकी पकड़ इतनी गहरी थी, उसका विश्लेषण इतना स्पष्ट और सटीक था और
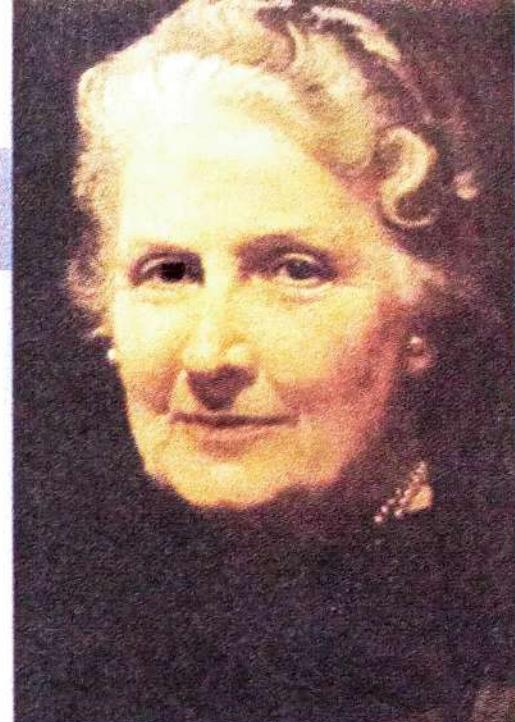
सबसे बढ़कर उसका आत्मविश्वास इतना मजबूत कि सब सांस रोके उसका भाषण सुनते रहे। भाषण खत्म होने पर पूरा हॉल खड़ा हो गया और तालियों से गूंज उठा। हर कोई **मरीया** को और साथ ही साथ ऐसी बेटी के पिता होने पर **एलेसान्द्रो** को बधाई दे रहा था। **एलेसान्द्रो** की सारी आपत्तियां और नाराजगी न जाने कहां खो गयी थी। अचानक वह अपनी चिकित्सक बेटी के गर्व से भरे पिता में तब्दील हो गये थे।

प्रतिष्ठा और सम्मान

31 अगस्त, 1870 के दिन जन्मी **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने 1896 में रोम के विश्वविद्यालय से चिकित्सा विज्ञान में डॉक्टर की उपाधि ग्रहण की। इसी वर्ष बर्लिन में आयोजित **फेमिनिस्ट कांग्रेस** में इटली की महिलाओं के प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व **मरीया** ने किया। वहां पर औरतों के काम करने को लेकर उनका भाषण इतना प्रभावशाली था कि यूरोप के कई अखबारों ने उसे फोटो के साथ प्रमुखता से प्रकाशित किया। चार साल बाद लंदन में ऐसी ही एक कांग्रेस में **मरीया** ने अपने व्याख्यान में सिसली की खदानों में बाल श्रमिकों की प्रथा पर तीखे प्रहार किये और **रानी विक्टोरिया** के संरक्षण में चल रहे बाल श्रम विरोधी अभियान का समर्थन किया। **रानी विक्टोरिया से मरीया की व्यक्तिगत मुलाकात और बातचीत भी हुई, जो ब्रिटिश साम्राज्य के उस चरमोत्कर्ष के दौरान बहुत बड़ा सम्मान समझा जाता था।**

इसके बाद **मरीया मोन्तेस्सोरी** अपना शेष जीवन एक समर्पित चिकित्सक के रूप में बिता देतीं तो भी महिला अधिकारों के इतिहास में उनका नाम अमर रहता। लेकिन इस महान व्यक्तित्व की यात्रा की यह केवल शुरुआत थी, जिसका अगला पड़ाव दो साल बाद आने वाला था। ❑

प्रेरणा

पढ़ाई पूरी करने के बाद **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने रोम के साइकिएट्रिक क्लिनिक में काम शुरू किया। उनके काम में शामिल था रोम के मनोरोगी केन्द्र से ऐसे मरीजों को छांटना, जिनका इलाज और अध्ययन किया जा सके। मनोरोगियों के उपचार का विज्ञान उन दिनों अपनी शैशवावस्था में था और आमतौर पर मनोरोगियों को पागल तथा मनोरोगी केन्द्र को पागलखाना ही कहा जाता था। इलाज में भी वैज्ञानिक तत्त्वों का समावेश नयी चीज थी। इस पागलखाने में उनका ध्यान मानसिक रूप से विमंदित बच्चों की ओर गया। उस जमाने में विमंदित बच्चों को भी 'पागल' ही समझा जाता था।

मरीया मोन्तेस्सोरी के संवेदनशील हृदय और प्रखर प्रतिभा ने उन बच्चों के हालात से एक नई अंतर्दृष्टि प्राप्त की। उस पागलखाने में ऐसे बच्चों को कैदियों की तरह रखा जाता था। ये उदास बच्चे छोटे–छोटे कमरों में मवेशियों की तरह भरे रहते थे। उनकी देखभाल करने वाली महिला उनसे भयंकर नफरत करती थी और उसे छिपाने की जरा भी कोशिश नहीं करती थी। एक दिन **मरीया** ने उससे पूछा कि वह उन बच्चों के साथ ऐसा निर्मम बर्ताव क्यों करती है? उसने कहा, 'देखना, ये लोग खाना खत्म करते ही कैसे फर्श पर गिरे टुकड़ों पर झपटते हैं!' **मरीया** ने देखा कि वह कमरा एकदम सूना था। उसमें खिलौने तो दूर, ऐसी कोई चीज नहीं थी जिसे बच्चे हाथों में ले सकें। जिसे उंगलियों से छू सकें, पकड़ सकें। **मरीया** को समझ में आया कि खाने के टुकड़ों पर बच्चे इसलिए नहीं झपटते कि वे भूखे होते हैं, बल्कि असल में तो वे उन टुकड़ों से खिलवाड़ करते हैं। उन बेचारों के लिए अपनी बौद्धिक क्षमता के उपयोग का इकलौता साधन था हाथ–पैरों की हरकतें। और इसलिए उन्हें कुछ चाहिए था जिस पर वे अपने हाथ आजमा सकें।

मरीया मोन्तेस्सोरी जितना अधिक इन बच्चों का अध्ययन करती गयीं, उतना ही वे उस समय की प्रचलित मान्यताओं से असहमत होती चली गयीं। उनकी यह मान्यता बनने लगी कि

विमंदित बच्चों की समस्या चिकित्साशास्त्रीय नहीं, बल्कि सीखने की समस्या है। उनकी यह धारणा बनने लगी कि सिखाने की विशेष विधियां अपनाकर विमंदित बच्चों के हालात में महत्त्वपूर्ण बदलाव लाए जा सकते हैं। लगभग ऐसी ही कुछ मान्यता उन दिनों फ्रांसीसी डॉक्टर **ज्याँ इटार्ड** और **एदुआर्द सेग्वें** ने भी व्यक्त की थी।

इन बच्चों को मानव-समाज में पुन: उचित स्थान दिलाना, उन्हें आत्मनिर्भर बनाना और मानवीय गरिमा वापस उन्हें दिलाना, एक ऐसा काम था जिसमें कई साल तक **मरीया** का मन रमा रहा। इसी सिलसिले में **मरीया** ने उन दो फ्रांसीसी डॉक्टरों के काम के बारे में भी पढ़ा, जिनका ऊपर जिक्र हुआ है। इससे **मरीया** की मान्यताओं को पुष्टि मिली। 1899 में तूरिन में हुई पेडेगोजिकल कांग्रेस में **मरीया** ने 'नैतिक शिक्षा' विषय पर पत्रवाचन किया और कहा कि **विमंदित बच्चे कोई असामाजिक जीव नहीं हैं बल्कि उन्हें भी शिक्षा के लाभ पाने का–अधिक नहीं तो–उतना बराबर का हक तो है ही, जितना किसी सामान्य बच्चे को**।

इटली में इस नए दृष्टिकोण ने काफी ध्यान आकर्षित किया। वहां के शिक्षामंत्री **डॉ. गुइडो बचेली** ने **मरीया मोन्तेस्सोरी** को विमंदित बच्चों की शिक्षा पर व्याख्यानों के लिए आमंत्रित किया। **मरीया मोन्तेस्सोरी** के व्याख्यानों ने इटली में वैज्ञानिक शिक्षण पद्धति की नींव रखी और एक राजकीय मनोवैज्ञानिक स्कूल की स्थापना की गयी, जिसका निदेशक **मरीया मोन्तेस्सोरी** को बनाया गया। 1899 से 1901 तक उन्होंने इस पद पर काम किया।

इस स्कूल में रोम के सामान्य स्कूलों से उन बच्चों को भेजा जाता था जिनकी सीखने की क्षमता से सामान्य शिक्षक पूरी तरह निराश हो चुके थे। बाद में रोम के 'पागलखाने' के विमंदित बच्चों

को भी इस स्कूल में भेजा जाने लगा। इन दो वर्षों में **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने ऐसे शिक्षकों की एक टीम तैयार की, जो दिमागी तौर पर कमजोर बच्चों के विशेष अध्ययन और शिक्षण के विशेष तरीके अपनाने में निष्णात थी।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने इस दौरान पेरिस और लंदन की यात्राएं भी कीं और वहां ऐसे बच्चों के इलाज तथा शिक्षण के लिए अपनाई जा रही पद्धतियों का भी अध्ययन किया। यहां तक कि उन्होंने अपनी डॉक्टरी की प्रैक्टिस छोड़ कर काफी समय पूरी तरह पढ़ाने को ही समर्पित कर दिया। वे सुबह आठ से शाम सात बजे तक का वक्त बच्चों के साथ बिताती थीं और फिर देर रात तक नोट्स बनाने, तालिकाएं तैयार करने, तुलनात्मक विश्लेषण करने, विचार करने और नई सामग्री तैयार करने में व्यस्त रहती थीं। जैसा कि उन्होंने एक बार कहा था, **ये दो वर्ष शिक्षण विज्ञान में मेरी पहली और सच्ची डिग्री थे**।

रूपरेखा और अनुमान

विमंदित बच्चों के साथ काम करते हुए **मरीया मोन्तेस्सोरी** को लगातार एहसास होता रहा कि उनकी पद्धति मूल रूप से दिमागी तौर पर कमजोर बच्चों के इलाज का तरीका–भर नहीं है, बल्कि इसमें शिक्षण के कुछ ऐसे सिद्धांत निहित हैं जो प्रचलित शिक्षण पद्धति से ज्यादा युक्तिसंगत हैं। क्योंकि ये सिद्धांत अधिक युक्तिसंगत हैं, इसलिए इनके जरिए कमजोर दिमाग का बच्चा भी तेजी से सीखने में सक्षम हो पाता है।

'पागल' समझे जाने वाले बच्चों को सिखाने में **मरीया मोन्तेस्सोरी** की तरकीबें इतनी कारगर साबित हुईं कि कई विमंदित बच्चे न केवल पढ़ना–लिखना सीख गये, बल्कि सार्वजनिक परीक्षाओं में

सामान्य बच्चों के साथ शामिल होकर उत्तीर्ण भी घोषित हुए। **मरीया** की हर तरफ तारीफ होने लगी। लेकिन इस सफलता पर उनकी प्रतिक्रिया बिल्कुल अलग थी।

उन्हें लगने लगा कि आमतौर पर स्कूलों का माहौल कितना नीरस और भारी है कि एक सामान्य स्वस्थ बच्चा भी कुल मिला कर उतना ही कर पा रहा है जितना उनके विशेष शिक्षित विमंदित बच्चे। इस विरोधाभास पर वे जितना अधिक सोचतीं, उनकी यह धारणा दृढ़ होती गयी कि यदि सभी बच्चों को इन्हीं पद्धतियों से शिक्षित किया जाए तो कोई भी सामान्य बच्चा कहीं ज्यादा सक्षम और श्रेष्ठ बालक बन सकेगा।

1901 में उन्होंने विमंदित बच्चों के साथ काम करना छोड़ कर अपना ध्यान सामान्य शिक्षण पद्धति के विकास की ओर लगाया। लेकिन यह काम शुरू होने में सात साल और बीत गये। उन्हें लगा कि यह करने से पहले उनके लिए बहुत-कुछ सीखना और सोचना बाकी है। यद्यपि वे उस समय विश्वविद्यालय में चिकित्साशास्त्र की व्याख्याता थीं, उन्होंने नए सिरे से एक विद्यार्थी के रूप में दाखिला लिया और दर्शनशास्त्र तथा मनोविज्ञान का उच्चतर अध्ययन करने लगीं। एक व्याख्याता फिर से विद्यार्थी बन गयी थी। सीखना और सीख कर बनना उनका जीवनधर्म हो गया था। जैसा कि बाद में उन्होंने एक युवा शिक्षक को पत्र में लिखा था--**जब सब-कुछ अस्पष्ट, बिखरा और धुंधला नजर आ रहा हो, अपनी शक्तियों को बटोर कर केन्द्रित करना हमेशा फलदायी होता है। मरीया** इसी तरह एक अस्पष्ट, अनजान-से अभियान के लिए अपनी आन्तरिक शक्तियां केन्द्रीभूत करने में व्यस्त हो गयी थीं।

मरीया के जीवन के इस दौर में हालांकि उस महान कार्य के बीज छुपे थे जिसके लिए उन्हें मानव-इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल है, लेकिन उस समय तक अपने भविष्य के कार्य की कोई

महती रूपरेखा उनके मन में स्पष्ट नहीं थी। **मरीया** मूलतः आस्तिक थीं और विश्व को संचालित करने वाली एक नियति में उनकी आस्था थी। उनका मानना था कि 'जीवन की कला है—जो घटित हो उसके प्रति समर्पित बने रहना।' लेकिन यह कोई नियतिवादी समर्पण नहीं था, बल्कि एक कर्मयोगी का समर्पण था जो किसी फल या महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिए नहीं, बल्कि केवल इसलिए कार्य को समर्पित रहता है क्योंकि वही उसके अस्तित्व का उद्देश्य है।

प्रारंभ में **मरीया मोन्तेस्सोरी** पर सबसे अधिक प्रभाव दो फ्रांसीसी डॉक्टरों के कार्यों का पड़ा। इनमें **डॉक्टर इटार्ड** ने गूंगे—बहरों पर विशेष तौर पर कार्य किया था और उनकी प्रसिद्धि थी एक ऐसे बालक को शिक्षित करने में, जो एवेरोन के जंगलों में भटकता मिला था। अथक सहनशीलता और सब्र के साथ इस बालक को शिक्षित करने के अनुभवों को उन्होंने अपनी पुस्तक **द केयर एंड एजूकेशन ऑव द वाइल्ड बॉय ऑव एवेरोन** में विस्तार से लिखा था।

दूसरे **डॉक्टर एडुआर्ड सेग्वें** ने दस साल तक पेरिस के मनोरोगी केन्द्रों में काम किया था और मनोरोगियों के शिक्षण—प्रशिक्षण पर अमूल्य अनुभवों को अपनी पुस्तक में प्रकाशित किया था। इन दोनों के कार्य को **मरीया मोन्तेस्सोरी** इतना महत्त्वपूर्ण मानती थीं कि उन्होंने दोनों की पुस्तकों को अपने हाथ से अपनी कॉपी में पूरा इटालियन में अनुवाद करके लिख डाला था। केवल **सेग्वें** की पुस्तक 600 से ज्यादा पन्नों की थी।

बाद में **सेग्वें** अमरीका चले गये थे और वहां उन्होंने कई मनोचिकित्सा केन्द्रों की स्थापना की थी। पहली किताब के कोई बीस साल बाद उनकी दूसरी किताब 'पागलपन और उसकी मनोवैज्ञानिक चिकित्सा' अमरीका में छपी। 1866 में छपी इस किताब को हासिल करने की **मरीया** ने बहुत कोशिश की। यहां तक कि लंदन में वे मनोविज्ञान में रुचि लेने वाले डॉक्टरों के पास घर—घर गयीं कि

किसी के पास इस किताब की एक प्रति मिल जाए। आखिरकार न्यूयार्क के एक डॉक्टर के यहां से फेंकी गयी रद्दी में मिली इस किताब की एक प्रति किसी ने **मरीया** को भेज दी। इस की हालत इतनी खस्ता थी कि **एलेसान्द्रो मोन्तेस्सोरी** ने अपनी बेटी को सौंपने से पहले इसे पूरी तरह 'कीटाणु मुक्त' करवाने की जिद की थी।

इस पुस्तक में **सेग्वें** ने यह अवधारणा प्रस्तुत की थी कि, 'मनोरोगी के शिक्षण के लिए उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमता के आधार पर शिक्षा प्राप्त करने वाले पर केन्द्रित जो पद्धति अपनायी जाती है, उसे यदि शिक्षण पर सामान्यत: लागू किया जाए तो संपूर्ण व्यक्तित्व के नवीन विकास की दिशा में यह एक नया कदम होगा।'

संवेदना और सक्रियता

1906 तक की अवधि में **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने विमंदित बच्चों के अध्ययन के अलावा भी कई क्षेत्रों में कार्य किया। वे इटली के दो महिला कॉलेजों में से एक, मेजिस्तेरो फेमिनाइल, में स्वच्छता विज्ञान की प्रवक्ता रहीं। इसके अलावा बच्चों की स्नायविक बीमारियों के अध्ययन पर उनके लेख अनेक चिकित्साशास्त्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित और चर्चित हुए। वे विश्वविद्यालय में शिक्षा पद्धति विषय के बाह्य परीक्षकों में से एक थीं। इस विषय के एक अन्य परीक्षक **लुइगी पिरेन्देलो** थे, जो बाद में एक नाटककार के रूप में विश्वप्रसिद्ध हुए। 1904 में रोम विश्वविद्यालय में वे मानव विज्ञान की प्रोफेसर नियुक्त हुईं। इसी दौरान उनकी प्रसिद्ध कृति **शिक्षा–शास्त्रीय मानव विज्ञान/ पेडेगोजिकल एन्थ्रोपॉलजी** प्रकाशित हुई।

विश्वविद्यालय में **मरीया मोन्तेस्सोरी** एक सफल प्राध्यापक थीं। एक विद्यार्थी ने उनकी कक्षाओं के बारे में लिखा है कि वे उन दिनों की अन्य बुद्धिजीवी महिलाओं की तरह अपने पहनावे

और रंग–ढंग में पुरुषोचित ठसका लाने का प्रयास नहीं करती थीं बल्कि अपनी पूरी नारीसुलभ गरिमा के साथ कक्षा के सामने आती थीं। अपने पहले व्याख्यान में उन्होंने मानव विज्ञान से ज्यादा यह बताया कि शिक्षा कैसी होनी चाहिए। उनके दो मुख्य बिन्दु थे—पहला यह कि शिक्षक का काम परखना नहीं, बल्कि मदद करना है। और दूसरा यह कि सच्ची मानसिक गतिविधि थकाती नहीं, बल्कि मन को तृप्त करती है।

अविश्वसनीय ढंग से मेहनती **मरीया मोन्तेस्सोरी** इस दौर में अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ कई क्लीनिकों और अस्पतालों से भी संबद्ध रहीं और उन्होंने अपनी डॉक्टरी की प्रैक्टिस भी जारी रखी। साथ ही, उनकी अच्छी–खासी प्राइवेट प्रैक्टिस भी एक चिकित्सक के तौर पर जम गयी थी। एक चिकित्सक के रूप में **मरीया** के मरीज केवल 'केस' नहीं, बल्कि ऐसे इंसान होते थे जिनकी तकलीफ **मरीया** समझती थी। वह एक संवेदनशील डॉक्टर थी।

एक रात **मरीया** को दो जुड़वाँ बच्चों का इलाज करने का बुलावा आया। उनके घर जाने पर **मरीया** ने देखा कि घर में निर्धनता का माहौल है। बच्चे लगभग मरणासन्न थे। उनका पिता कह चुका था, अब डॉक्टर को बुलाने का क्या फायदा, ये बच नहीं सकते। **मरीया** ने पहुंच कर उन बच्चों की मां को सोने भेज दिया। चूल्हा जलाया, पानी गर्म कर बच्चों को नहलाया। उनका विशेष पथ्य पकाया, उन्हें खिलाया, दवा दी, सुलाया। धीमे–धीमे रात–भर में **मरीया** की स्नेहपूर्ण परिचर्या से बच्चों की तबीयत सुधरती गयी।

कई बरस बाद दोनों हट्टे–कट्टे लड़कों के साथ उनकी मां **डॉक्टर मरीया मोन्तेस्सोरी** को बाजार में मिली तो बेटों से कहने लगी, **जाओ, उन्हें प्रणाम करो। वे तुम्हारी मां हैं। तुम्हें यह जिन्दगी उन्होंने ही दी है।** □

अवसर

1906 तक के जीवन में **मरीया मोन्तेस्सोरी** के जीवन की दो प्रमुख उपलब्धियां थीं–इटली की पहली महिला चिकित्सक होना और विमंदित बच्चों के उपचार की चर्चित पद्धति का विकास, लेकिन अगले दो साल में उन्होंने वह महत्त्वपूर्ण खोज कर डाली जिसकी तुलना कोलम्बस द्वारा अमरीका की खोज या न्यूटन द्वारा गति के नियम की खोज से की जाती है। **मरीया मोन्तेस्सोरी** की यह खोज मानव–मस्तिष्क के आंतरिक स्वभाव और विकास के बारे में थी। वास्तव में **मरीया मोन्तेस्सोरी का महत्त्व मस्तिष्क के विकास की विधि की खोज करने में है,** न कि उस पद्धति के विकास में, जिसे शिक्षण की **मोन्तेस्सोरी पद्धति** कहा जाता है। यह पद्धति मूलत: उस खोज का नतीजा–भर थी और इसमें देश–काल अनुरूप परिवर्तन–परिवर्द्धन भी लगातार हो रहे हैं। लेकिन शिक्षण–प्रक्रिया की आधारभूमि के रूप में **मोन्तेस्सोरी सिद्धांत** का महत्त्व वैसा ही अटल है जैसे कि पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण का नियम।

स्वयं **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने लिखा है, **यह मानना गलत होगा कि केवल बच्चों को ध्यान से देखने–भर से हमें उनके छिपे हुए स्वभाव की जानकारी हो गयी और उसके आधार पर विशेष स्कूल और शिक्षण पद्धति का विकास कर लिया गया। जो बात पता न हो, उसे देख पाना भी संभव नहीं है। कोई भी केवल अंतर्प्रेरणा से यह कल्पना नहीं कर सकता कि बच्चे की दो प्रवृत्तियां (सामान्य और असामान्य) होती हैं, और न ही उन्हें प्रयोग द्वारा सिद्ध कर सकता है। कोई भी नई चीज सामने आती है अपनी खुद की ऊर्जा के बल पर। वह उभरती है और महज संयोग से ही दिमाग पर छा जाती है।**

मानव–स्वभाव के विकास के रहस्य किस प्रकार 'अपनी ऊर्जा के बल पर' **मरीया मोन्तेस्सोरी** के सामने प्रकट हुए और उनके दिमाग पर छा गये, इसका संयोग एक रोचक तरीके से बना। रोम में
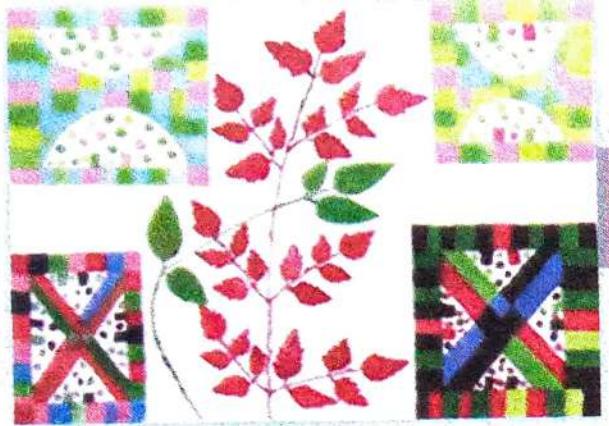
एक गन्दी बस्ती थी, जिसमें गरीबी, बेरोजगारी और गंदगी का साम्राज्य था। पूरी बस्ती में कोई व्यवस्था नहीं थी। इस बस्ती की सफाई और वहां के लोगों को बेहतर जीवन देने के उद्देश्य से वहां की झुग्गियों को हटा कर एक बहुमंजिला इमारत बनवायी गयी। बस्ती में रहने वाले परिवारों को उसमें फ्लैट दिये गये, इस शर्त पर कि वे साफ-सफाई और व्यवस्था बनाए रखेंगे। यह परियोजना एक सोसायटी की ओर से चलायी गयी जिसे कई बैंकों का सहयोग मिल रहा था।

लेकिन इस इमारत में एक समस्या पैदा हो गयी। ज्यादातर मां-बाप काम पर चले जाते थे और बड़े बच्चे स्कूल। इमारत में केवल छोटे बच्चे रह जाते थे, जो दिन-भर धमाचौकड़ी मचाते, गंदगी फैलाते और दीवारें गंदी करते। हाउसिंग सोसायटी ने कई बार सफ़ाई और मरम्मत करवाने के बाद तय किया कि अगर दिन-भर इन बच्चों को एक जगह इकट्ठा कर दिया जाये और कोई एक व्यक्ति इनकी देखभाल करे तो उसका खर्च बार-बार सफाई और रंग-रोगन करवाने से कम बैठेगा।

सवाल उठा कि इन बच्चों को किसकी देखरेख में छोड़ा जाये। सोसायटी के एक सदस्य ने बच्चों के बारे में **मरीया मोन्तेस्सोरी** के लेख पढ़े थे। उसने उनसे संपर्क किया। वे इस काम की देखभाल के लिए तुरन्त तैयार हो गयीं क्योंकि यहां उन्हें एक मौका नजर आया अपनी पुरानी मान्यताओं को परखने का। विमंदित बच्चों की देखभाल के दौरान उन्हें बार-बार लगता रहा था कि विशेष पद्धति से सिखाने को यदि सामान्य बच्चों पर लागू किया जाए तो बच्चा जल्दी और तेजी से सीख सकता है, साथ ही उसका भावनात्मक विकास भी बेहतर हो सकता है। लेकिन पूरे इटली में सामान्य बच्चों के लिए लागू स्कूल-व्यवस्था के तहत कहीं भी नये प्रयोग करना संभव नहीं था। यहां अवसर था कि स्वस्थ बच्चों को सिखाने के लिए विशेष पद्धति अपनाने का तजुर्बा किया जा सके।

तैयारी

सबसे पहला काम था बच्चों के लिए कमरा तैयार करना। कमरे में सामान्य स्कूलों की तरह बैंचें नहीं लगाई जा सकती थीं। इस कमरे का खर्चा इमारत के रख–रखाव के बजट में से निकल रहा था और इस बजट में स्कूली फर्नीचर खरीदने का प्रावधान नहीं था। बच्चों के कमरे को 'ऑफिस' का नाम दिया गया था। लिहाजा **मरीया** ने इस 'ऑफिस' के लिए छोटी–छोटी मेजें और कुर्सियां बनवा लीं। कुछ आरामकुर्सियां भी बनवायीं और कुछ वैसे उपकरण, जो विमंदित बच्चों को सिखाने में काम आते थे। बैंच के बजाय मेज–कुर्सी का होना एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इन्हें बच्चे जैसे चाहे घुमा–फिरा कर बैठ सकते थे। कमरे की व्यवस्था में नए–नए बदलाव करना संभव था।

इस प्रकार दुनिया का पहला मोन्तेस्सोरी स्कूल शुरू हुआ। इसमें थे साठ डरे हुए बच्चे, आंसुओं से भरी आंखें, भर्राए गले, भावहीन चेहरे, विस्फारित घबराई नजरें। बच्चे, जिन पर कोई ध्यान नहीं देता था। जो अंधेरी जर्जर झुग्गियों में जन्मे थे, जहां कुछ भी ऐसा नहीं था जो उनके मस्तिष्क को उत्प्रेरित करे। वे कुपोषित थे, ताजा हवा और सूरज की पर्याप्त रोशनी से वंचित। वे अनखिले फूलों की तरह थे जिनमें कलियों की ताजगी नहीं थी। उनकी आत्मा वैरागियों की तरह अंधेरी खोह में कैद थी।

मरीया मोन्तेस्सोरी चूंकि अन्य कामों में भी व्यस्त थीं इसलिए पूरे दिन वहां नहीं रह सकती थीं। ऐसे में एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो बच्चों की दिन–भर देखभाल कर सके। यह कोई नियमित स्कूल या संस्थान नहीं था जहां पक्की नौकरी या तरक्की की उम्मीद हो, इसलिए कोई पढ़ा–लिखा प्रशिक्षित अध्यापक यह काम करने को तैयार नहीं हुआ। अंततः इमारत के चौकीदार

की बेटी को इस काम पर तैनात किया गया। बाद में एक सिलाई करने वाली महिला ने भी यह काम संभाला। **प्रशिक्षित अध्यापक का न मिलना भी वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि क्लास में पढ़ाने की ट्रेनिंग लिए हुए व्यक्ति के लिए मरीया मोन्तेस्सोरी के अनूठे नए तौर-तरीके अपनाना शायद मुश्किल होता। पारंपरिक शिक्षा पद्धति का उसका प्रशिक्षण उसके व्यवहार में दखल देता ही देता। मरीया मोन्तेस्सोरी ने अपने इन कच्चे अध्यापकों को कोई सिद्धांत नहीं सिखाए। कोई निर्देश नहीं दिए। खुली छूट दी। केवल उपकरणों का सही इस्तेमाल सिखाया ताकि बच्चे भी देख कर सीख सकें और खुद उनका इस्तेमाल कर सकें।**

पहली खोज

बच्चों के इस केन्द्र का औपचारिक उद्घाटन करना तय किया गया। **6 जनवरी, 1906 के दिन इसके उद्घाटन का समारोह आयोजित किया गया।** बच्चों की देखभाल करने वाली लड़की ने उत्साह से बच्चों को अभ्यास कराया कि वे मेहमानों को फौजी तरीके से सल्यूट करेंगे। लेकिन ऐन मौके पर घबराए बच्चे सब-कुछ भूल गये। उन बच्चों की हालत देखकर एक संभ्रान्त महिला ने निराशापूर्वक कहा कि इन्हें तो शायद महीने-भर में भी कुछ सिखा पाना संभव नहीं है।

लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** की अंतर्प्रेरणा कुछ और कह रही थी। उन्होंने उस अवसर पर एक मंत्रमुग्ध करने वाला भाषण दिया और न जाने किस भावना के वशीभूत होकर कहा कि एक दिन पूरी दुनिया इस काम का जिक्र करेगी। उनके ये शब्द एक सही भविष्यवाणी सिद्ध हुए।

उस समय तक भी उन्हें अंदाज नहीं था कि उनका यह प्रयोग कितना मूल्यवान सिद्ध होगा। वे उस किसान की तरह थीं, जो खेती के लिए अच्छे बीज लेने पहुंचे और उसके हाथ सोने के दानों का

ढेर लगे। मानो किसी अलादीन का जादुई चिराग मिल गया हो, जो अप्रत्याशित खजानों के दरवाजे उनके सामने खोल दे।

इस केन्द्र में बच्चों के साथ काम करते हुए **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने अपनी यह मूलभूत खोज की थी कि, **बच्चे के असामान्य व्यवहार के पीछे बचपन की एक सामान्य प्रवृत्ति छिपी होती है। बच्चे में जो गुण और क्षमताएं समझी जाती हैं, उनसे कहीं अधिक और ऊंची प्रवृत्ति एक बच्चे में मौजूद रहती है। मानो व्यक्तित्व का एक श्रेष्ठतर पक्ष हर बच्चे के भीतर जन्म लेने को तैयार रहता है।**

विमंदित बच्चों को सिखाने के लिए जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता था, उन्हें काम में लेने के लिए उन बच्चों को तरह–तरह से प्रेरित और आकर्षित करना पड़ता था। लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** को चकित करने वाली पहली बात यह थी कि सामान्य बच्चे स्वयं उन उपकरणों को काम में लेने को आतुर नजर आए। मानो, सीखना बच्चे का नैसर्गिक स्वभाव हो।

एक दिन मरीया मोन्तेस्सोरी ने देखा कि एक तीन साल की बच्ची अलग–अलग आकार के लकड़ी के टुकड़ों को एक खांचे में फिट कर रही है। वह उन्हें लगाती। फिर निकाल कर बिखेर देती। फिर वापस लगाने लगती। वह इस काम में इतनी मशगूल थी कि उसे अपने आस–पास का कोई होश नहीं था। वह पूरी तरह उसी निकालने–लगाने में डूबी हुयी थी। मरीया मोन्तेस्सोरी ने चुपचाप अन्य बच्चों को इकट्ठा किया और उन्हें गाने के लिए कहा। बच्चे गाने लगे। फिर बच्चों को कमरे में गोल–गोल घूम कर नाचने के लिए कहा। बच्चे गाते हुए कमरे में नाचने लगे। लेकिन सबके बीच वह बच्ची इस सबसे बेखबर लकड़ी के टुकड़ों को
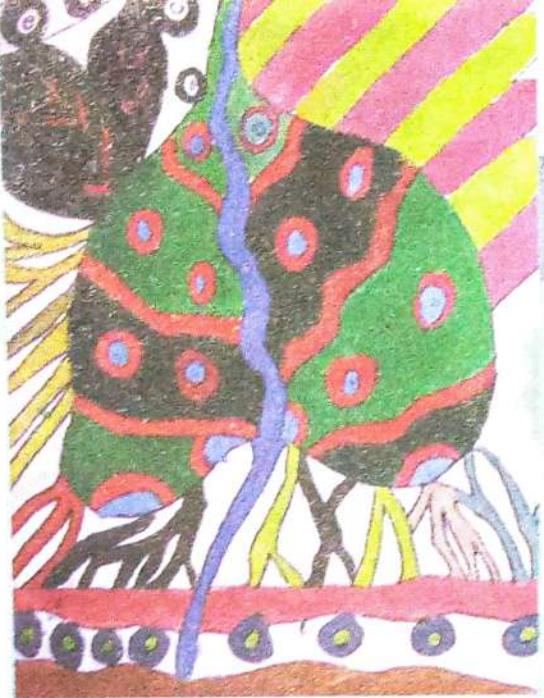
लगाने–निकालने में मग्न रही। मरीया मोन्तेस्सोरी ने अचानक पीछे से जा कर उसे कुर्सी समेत उठा लिया। बच्ची ने कस कर लकड़ी के टुकड़ों को पकड़ लिया ताकि वे बिखर न जाएं। मरीया मोन्तेस्सोरी ने कुर्सी को बच्ची समेत एक बड़ी मेज पर रख दिया और बच्ची वहीं बैठी–बैठी एक बार फिर से अपनी कार्रवाई में लग गयी, मानो कुछ हुआ ही न हो। मरीया मोन्तेस्सोरी की वैज्ञानिक बुद्धि मन ही मन उसकी हरकतें गिन रही थी। पूरे बयालीस बार टुकड़ों को लगाने और निकालने के बाद वह बच्ची रुक गयी। संतोषपूर्वक मुस्कराई और चारों तरफ देखा, मानो किसी सपने से जगी हो। इतनी देर तक ध्यान से इतना काम करने के बाद वह थकी हुई नहीं, बल्कि ज्यादा तरोताजा नजर आ रही थी।

इस तरह के अनुभवों से शिक्षण की मोन्तेस्सोरी पद्धति की नींव पड़ी जिसमें सिद्धांतत: सिखाने का प्रयास नहीं, बल्कि सीखने की नैसर्गिक स्वत:स्फूर्त प्रवृत्ति शिक्षा का आधार है।

संवेदनशील काल

मरीया मोन्तेस्सोरी ने पाया कि किसी भी नई चीज या काम को बार–बार ज्यों–का–त्यों दोहराना बच्चे की एक मानसिक आवश्यकता है। एक बिन्दु पर आकर उसे प्रतीत होता है कि वह उन नये शब्दों, हरकतों या काम से पूरी तरह परिचित हो गया है, उसका हर पक्ष जान गया है, तभी वह रुकता है, उससे पहले नहीं। बच्चे के स्वभाव की यह प्रवृत्ति सिखाने की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

इसी प्रकार **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने देखा कि कक्षा खत्म होने के बाद जब वे सामान को वापस अलमारी में रखती हैं तो सारे बच्चे उनके आस–पास जमा हो जाते हैं। बच्चों को कई बार कहा गया
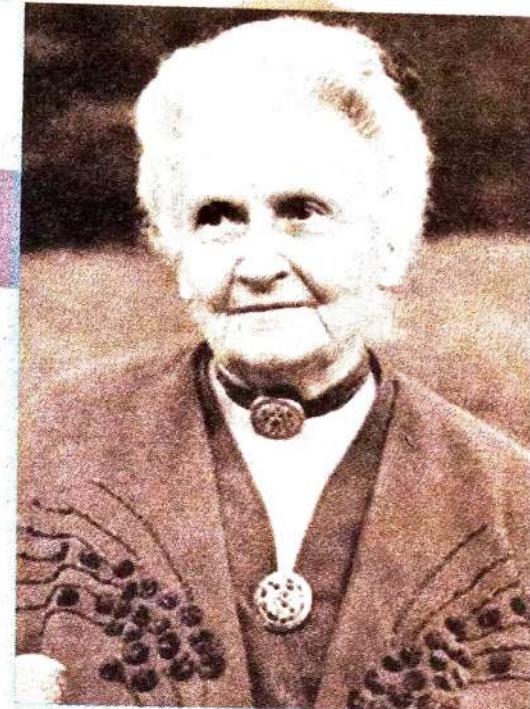
कि वे अपनी जगह पर बैठे रहें, लेकिन वे सुनते ही नहीं थे और मानो विवश होकर सामान वापस रखती **मरीया** के इर्द-गिर्द जमा हो जाते थे। **मरीया** को सूझा कि कहीं वे खुद तो यह सामान रखने को प्रवृत्त नहीं हैं? उन्होंने बच्चों से कहा कि वे सामान वापस अलमारी में रख दें। बच्चों ने उत्साहपूर्वक सामान बटोरा और अलमारी खोलकर हर चीज एकदम सही तरीके से ज्यों-की-त्यों जमाने लगे जैसे **मरीया** जमाती थीं। उनका यह काम उस सिद्धांत का आधार बना जिसे **मोन्तेस्सोरी पद्धति** में **संवेदनशील काल** कहा जाता है। यह उम्र थी बच्चों के **व्यवस्था-संवेदनशील काल** की। **अपने अनुभवों से मोन्तेस्सोरी ने पाया कि बारह महीने की उम्र से लगभग तीन साल की उम्र तक बच्चे में 'व्यवस्था' के प्रति एक नैसर्गिक संवेदनशीलता होती है। इस दौरान वह हर चीज एकदम वैसी ही चाहता है जैसी उसने पहले देखी है।** आस-पास के लोग, माहौल, बातें, खेल, कपड़े आदि सब-कुछ उसे एकदम 'वही' चाहिए। जरा-सा भी परिवर्तन होते ही वह उसे ठीक करने की कोशिश करता है। किसी बच्चे को कोई कहानी या गाना सुनाते हुए उसे थोड़ा-सा बदलते ही बच्चा विचलित हो जाता है और उसे सुधारने की कोशिश करता है। **आमतौर पर बच्चों को बिखराव और अव्यवस्था का अवतार माना जाता है, पर मरीया मोन्तेस्सोरी ने सिद्ध किया कि परिवर्तन और प्रयोग बाद की विकसित अवस्था के गुण हैं। नैसर्गिक रूप से बच्चे के स्वभाव में व्यवस्था की प्रवृत्ति होती है।**

चुनने की स्वतंत्रता

एक दिन अध्यापिका कक्षा में देर से पहुंची। पिछले दिन वह अलमारी पर ताला लगाना भूल गयी थी। उसने देखा कि बच्चों ने अलमारी खोल ली है। कुछ बच्चे सामान को देखते सोच-विचार में डूबे

हैं, कुछ सामान निकाल रहे हैं, कुछ सामान लेकर उससे खेलने में मग्न हैं। अध्यापिका नाराज हुई। वह बिना पूछे अलमारी खोलने और सामान निकालने के लिए बच्चों को 'चोरी' के लिए सजा देना चाहती थी। लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने इस सब में भी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति देखी जो आगे चलकर **मोन्तेस्सोरी पद्धति** का महत्त्वपूर्ण आधार बनी। उन्होंने पाया कि जो बच्चे जिन उपकरणों से खेलना सीख चुके थे उन्होंने उन उपकरणों को चुनने का फैसला किया था और बाकी सोच-विचार कर रहे थे कि कौन-सी चीज चुनी जाए। चूंकि उपकरणों को निकालने और उनसे जी-भर कर खेलने के बाद उन्हें वापस अलमारी में जमाना भी बच्चों की गतिविधि का उतना ही अनिवार्य हिस्सा था, इसलिए उसे 'चुराने' जैसी कोई बात वहां नहीं थी।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने कमरे में छोटी-छोटी बिना दरवाजे की अलमारियां लगवा दीं जिनसे बच्चे बिना किसी मदद के सामान ले सकें और खेल कर वापस जमा सकें। इस प्रयोग के बाद उन्होंने **गतिविधि चुनने की स्वतंत्रता** की प्रवृत्ति का सिद्धांत प्रतिपादित किया, जो बाद में दुनिया-भर के **मोन्तेस्सोरी स्कूलों** की स्थापना में आधारभूत रूपरेखा का काम करता है।

खेल नहीं, काम

मरीया मोन्तेस्सोरी के काम में रुचि लेने वाली रोम की कुछ संभ्रान्त-संपन्न वर्ग की महिलाओं ने गरीब बच्चों के उस केन्द्र के लिए कुछ महंगे खिलौने उपहार में दिए। इनमें सजी-धजी गुड़ियाएं थीं, गुड़िया का घर था, खाने के बरतन थे, रसोई थी, रसोई का सामान था, गुड़िया का फर्नीचर था और गुड़िया के काम आने वाली ऐसी ही तमाम चीजें थीं। **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने ये खिलौने बच्चों के कक्ष में रखवा दिए जिससे बच्चे उन्हें ले सकें और इच्छानुसार उनसे खेल सकें।

उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही जब बच्चों ने इन खिलौनों की तरफ आंख उठा कर भी नहीं देखा।

लिहाजा **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने बच्चों को बुलाकर खुद इन खिलौनों से खेलना शुरू कर दिया। ये गुड़िया की रसोई, ऐसे चूल्हा जलाया, ऐसे खाना पकाया, ऐसे मेज लगाई, ऐसे खाना लगाया, ऐसे गुड़िया के परिवार ने बैठ कर खाया ..... इत्यादि। बच्चे बड़े ध्यान से सारा तमाशा देखते रहे और उसके बाद लौट कर वापस अपने सीखने वाले उपकरणों से खेलने लगे। यह भी एक नई खोज थी।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने पाया कि बच्चे स्वाभाविक रूप से काल्पनिक खेलों के मुकाबले रोजमर्रा के असली कामकाज और गतिविधियों में अधिक रुचि लेते हैं। यह मानना कि 'खेल' बच्चे का नैसर्गिक स्वभाव है, पूरी तरह से सही नहीं है। हमें 'खेल' की अवधारणा को नए सिरे से परिभाषित करना होगा। ऐसी कोई भी गतिविधि, जिसमें बच्चा अपनी इन्द्रियों, हाथ–पैरों और दिमाग का पूरा इस्तेमाल कर सके, बच्चे की स्वाभाविक जरूरत होती है। उसके विकास के लिए प्राकृतिक जरूरत बन जाती है। वास्तविक जगत् से दूर के खेल 'बड़ों' की दुनिया के खेल हैं। बच्चा सचमुच की दुनिया को सीखना चाहता है जो हमेशा उसके चारों तरफ है। केवल 'बड़ों' के 'सुझाव' और 'प्रयास' से सीखे खेल में प्रवृत्त होना बच्चे का सहज गुण नहीं है।

यह बात हम अपने आस–पास बच्चों में कभी भी देख सकते हैं। बच्चे खिलौना हवाई जहाज से ज्यादा रुचि झाड़ू लगाने में लेते हैं। एकदम छोटे बच्चे टीवी देखने से ज्यादा रिमोट के बटन दबा–दबा कर चैनल बदलने या टीवी को चालू या बंद करने में रुचि लेते हैं।

इस प्रवृत्ति के जरिये बच्चों के इन्द्रिय, मन और गतिविधि को विकसित करने का सिद्धांत **मोन्तेस्सोरी पद्धति** का एक अन्य महत्त्वपूर्ण आधार है।

न सजा, न इनाम

मरीया मोन्तेस्सोरी की कक्षा की शिक्षिका चूंकि प्रशिक्षित अध्यापिका नहीं थी, इसलिए कई बार बच्चों के साथ काम करने के नए-नए तरीके खोजती रहती थी। एक दिन जब **मरीया मोन्तेस्सोरी** वहां पहुंचीं तो उन्होंने पाया कि एक बच्ची गले में बड़ा-सा सजावटी तमगा पहने उदास बैठी है। पता चला कि शिक्षिका अच्छा काम करने वाले को इनाम में वह तमगा पहना देती है। लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने पाया कि वह बच्ची असल में दुखी है। तमगा लटकाए रखना असल में तो उसके लिए सजा की तरह है। इससे पहले यह तमगा एक लड़के को दिया गया था। उसे इससे दिक्कत हो रही थी, तो उसने तमगा दूसरी लड़की के गले में डाल दिया। लड़के के मन में ऐसा कोई भाव नहीं था कि उसने कुछ गलत काम किया हो। यह एक विरोधाभासी बात थी। जिसे तमगा मिला वह दुखी और जिसने तमगा ठुकरा दिया वह मस्ती से काम में डूबा हुआ। **कई बार बच्चों को शाबासी या सजा देने के कई प्रयोग करके शिक्षिका ने निराश होकर उन्हें इनाम और सजा देना छोड़ ही दिया।**

इस पूरे अनुभव और फिर अनेक प्रयोगों के बाद **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने पाया कि बच्चों को जो गतिविधियां दी जा रही हैं, उनमें महारत हासिल करके उन्हें पूरी तरह से करने में सफल होना ही बच्चे के लिए सबसे बड़ा इनाम है। कोई भी बाहरी प्रशंसा या पुरस्कार उस खुशी का मुकाबला नहीं कर सकते, जो बच्चे को अपना काम सफलतापूर्वक करने से मिलती है। इसके बाद

मोन्तेस्सोरी स्कूलों में कई सालों तक अनेक तजुर्बे किये गये और निष्कर्ष यही निकला कि कक्षा या समूह में बच्चे की 'शरारत' यानी असामान्य व्यवहार का मूल कारण उसी आंतरिक ऊर्जा का विचलन है। जब बच्चे को इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को संतुष्ट करने में बाधा आती है तो वह ऐसा व्यवहार करता है जिसे शैतानी या असामान्य व्यवहार कहा जाता है। इसके लिए डांट-फटकार, सजा देना असामान्य बर्ताव को और अधिक बढ़ावा देता है। यदि बच्चे को गतिविधि सीखने और पूरा करने में मदद की जाए तो वह सहज रूप से सामान्य व्यवहार करने लगता है। आमतौर पर जब सजा देना जरूरी ही हो, तो **मोन्तेस्सोरी स्कूलों** में बच्चे को बाकी समूह से अलग बैठा दिया जाता है। कुछ ही देर में बच्चा ऊब जाता है और वापस गतिविधि में शामिल होने को बेचैन हो उठता है। काम करने से वंचित करना बच्चे के लिए सबसे बड़ी सजा होती है।

चुप्पी का खेल

मरीया मोन्तेस्सोरी की एक बड़ी उपलब्धि थी—बच्चों में 'मौन' के प्रति मोह की खोज। आमतौर पर यह धारणा है कि बच्चे शोरगुल पसंद करते हैं। पूरे वक्त हल्ला मचाते रहते हैं, बोलते रहते हैं। मांएं तक शिकायत करती हैं कि बच्चों के शोर के कारण उनके 'सिर में दर्द' हो जाता है। लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी ने पाया कि इस सबके बावजूद बच्चों में चुप्पी के प्रति एक सहज आकर्षण होता है। इसी खोज के आधार पर मोन्तेस्सोरी पद्धति के स्कूलों में 'चुप्पी का खेल'** काफी लोकप्रिय है।

काम के बीच में अचानक अध्यापिका एक तख्ती ऊपर उठाती है जिस पर लिखा होता है—साइलेंस। बच्चे उसे देखते ही चुप हो जाते हैं। खेलना, लिखना या चित्र बनाना बंद कर देते

हैं। हाथ में जो भी है, नीचे रख देते हैं। पूरे कमरे में सन्नाटा छा जाता है। अध्यापिका कमरे के परदे खींच देती है और बिना आवाज किये दबे पांव कमरे के बाहर आ जाती है। हलके अंधेरे कमरे में मौन–स्थिर बैठे बच्चे सन्नाटे की आवाज सुनते रहते हैं। नीरवता में घड़ी की टिक–टिक, हवा की सरसराहट, दूर गुजर रही गाड़ी की धीमी घरघराहट, कागज का फड़फड़ाना आदि मंद ध्वनियों को बच्चा स्पष्टता से महसूस करता रहता है। सभी बच्चे सायास मानो इस सन्नाटे को बनाए रखते हैं। करीब दस–पन्द्रह मिनट बाद एकदम धीमी, अनसुनी–सी फुसफुसाहट में कमरे के बाहर खड़ी अध्यापिका एक बच्चे का नाम लेती है। वह बच्चा बिना आवाज किये एकदम चुपचाप मेज–कुर्सी खिसकाता है। खड़ा होता है और अध्यापिका की ही तरह दबे पांव कमरे से बाहर आ जाता है। एक–एक करके नाम पुकारे जाते हैं और बच्चे बिना आवाज किये कमरे के बाहर आते रहते हैं। सारे बच्चों के बाहर आने पर खेल पूरा होता है।

आमतौर पर पंद्रह–बीस मिनट का यह सन्नाटा बच्चों को इतना मोहित करता है कि इसे बनाए रखने के 'काम' को वे पूरे मनोयोग से निभाते हैं। **बच्चों की श्रवणशक्ति, ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता और संवेदनशीलता के विकास में इस खेल की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।**

उच्चतर चेतना

चुप्पी के खेल से एक बच्चे की मानसिकता के बारे में और भी गहरे अर्थ प्रगट हुए। एक दिन, जिस समय चुप्पी का खेल चल रहा था, कक्षा में बांटने के लिए किसी के भेजे हुए स्वादिष्ट बिस्किट आ पहुंचे। बच्चे खेल में इतने खोए हुए थे कि किसी ने उन पर ध्यान नहीं दिया। खेल

खत्म होने पर जब **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने बिस्किट लेने के लिए बच्चों को बुलाया तो खेल के आनंद से सराबोर बच्चों ने उनमें तनिक भी रुचि नहीं ली। कई ने तो साफ मना ही कर दिया। अचरज में भरी **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने कई बार यह प्रयोग किया। आमतौर पर मिठाई–बिस्किट–चॉकलेट आदि के दीवाने बच्चे चुप्पी के खेल के तुरंत बाद इतने आत्मविभोर हो जाते थे कि उन्हें कुछ खाने को प्रेरित करना लगभग असंभव हो जाता था। **मरीया मोन्तेस्सोरी ने नतीजा निकाला कि छोटे बच्चों में भी एक गहरी उच्चतर चेतना जाग्रत होती है। एक ऐसी आध्यात्मिकता, जो उन्हें प्राकृतिक जरूरतें पूरा करने–भर से ऊंचा स्थान दिलाती है। इस उच्चतर चेतना या आध्यात्मिकता की तृप्ति सहज ही उन्हें स्वाद या भूख–प्यास जैसी ऐन्द्रिक तृप्तियों से ऊंचे स्तर पर ले जाती है।**

यह एक क्रांतिकारी खोज थी। ज्यादातर लोग आज तक देखे बिना इसमें विश्वास करना मुश्किल पाते हैं। एक बार एक पादरी 'चुप्पी के खेल' के गहरे अर्थों का साक्षात् करने एक **मोन्तेस्सोरी स्कूल** पहुंचा। साथ में स्वादिष्ट बिस्किट ले गया था। खेल के बाद उस दयालु पादरी ने प्रभावित बच्चों में वे बिस्किट बांटे। अलग–अलग आकार के इन बिस्किटों को खाने के बजाय बच्चे उन्हें लेकर मेज के इर्द–गिर्द जमा हो गये और बातें करने लगे–देखो, मेरा त्रिकोण है, मेरा तो गोल है, इसका बिस्किट चौकोर है, यह अर्धचन्द्राकार है ... इत्यादि। पदार्थ पर बुद्धि की यह विजय देखकर पादरी आत्मविभोर हो गया और उसने बाद में लिखा कि **मोन्तेस्सोरी पद्धति वास्तव में बच्चे में छिपे ईश्वर के प्रतिरूप और स्वर्ग के सच्चे अधिकारी को सामने लाने वाली शिक्षण पद्धति है।**

आत्मसम्मान

एक दिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने तय किया कि बच्चों को सलीके से रहने के तौर-तरीके सिखाना भी जरूरी है। एक सामान्य-सी बात, कि कैसे अपनी भरी या बहती नाक को तमीज से साफ किया जाए—सिखाने के लिए बच्चों को इकट्ठा किया। उन्होंने बताया कि नाक साफ करने के लिए हल्के-से रूमाल निकालना चाहिए, उन्होंने यह बताते हुए रूमाल निकाला। कैसे उसे नाक पर रखना चाहिए, यह बताते हुए उसे नाक पर रखा। और कैसे नाक धीमे-से साफ करके रूमाल वापस रख लेना चाहिए—बताते हुए नाक साफ की और रूमाल वापस जेब में रख लिया।

यह सब ध्यान से देख रहे बच्चे खुशी से ताली पीटने लगे। मानो इससे बढ़िया कुछ उन्होंने पहले कभी देखा ही न हो। **मरीया मोन्तेस्सोरी** की समझ में नहीं आया कि नाक साफ करने जैसी मामूली बात में ऐसी खुशी होने जैसा क्या है? फिर धीरे-धीरे उनकी समझ में सारी बात आने लगी। आमतौर पर नाक साफ करना एक ऐसी बात थी जिसे लेकर बच्चा हमेशा अपमानित होता था। बड़े लोग हमेशा डांट कर, हिकारत से कहते थे--देखो तुम्हारी नाक बह रही है, नाक साफ क्यों नहीं करते, रूमाल कहां है तुम्हारा ..... आदि। लेकिन पहली बार किसी ने, किसी बड़े ने, बिना डांटे या अपमानित किये, बिना उन्हें गंदा बताये, नाक साफ करने के बारे में न सिर्फ विस्तार से बात की थी, बल्कि उसे सही ढंग से करके भी दिखाया था।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने इस घटना और ऐसे ही अन्य अनुभवों के आधार पर इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की खोज की कि **हर बच्चे में एक गहरा आत्मसम्मान होता है।** बच्चे के इस आत्मसम्मान को ध्यान में रखकर उससे बात करना, उसे कुछ बताना या सिखाना हमेशा सकारात्मक फल देता है, जबकि अपने को बड़ा या वयस्क मानते हुए बच्चे को कमतर आंकना और उसे डांट-फटकार कर आदेश देते

हुए बात करना बच्चे के मन में स्थायी रूप से गहरे घाव छोड़ देता है जो उसके व्यक्तित्व के विकास में जीवन-भर बाधक बने रहते हैं।

लेखन का आविर्भाव

इस केन्द्र में **मरीया मोन्तेस्सोरी** के लिए सबसे चमत्कृत और आह्लादित करने वाली खोज थी–**लेखन का प्रकट होना।** असल में **मरीया मोन्तेस्सोरी** का भी ज्यादातर लोगों की तरह मानना था कि पढ़ना और लिखना यदि छह साल की उम्र से पहले सिखाया जाय तो परिणाम अच्छे नहीं निकलते। बच्चे का दिमाग करीब छह साल की उम्र में इतना परिपक्व होता है कि पढ़ना और लिखना सीख सके। लेकिन बच्चों ने उनकी इस मान्यता को झुठला दिया। कई बार कई बच्चों ने उनसे कहा कि वे पढ़ना–लिखना सीखना चाहते हैं। **मरीया** उनसे यही कहतीं कि थोड़ा और बड़े होने पर उन्हें पढ़ना–लिखना सिखाया जाएगा। लेकिन कई बच्चों के मां–बाप ने भी कहा कि वे बच्चों को पढ़ना–लिखना सिखाना चाहते हैं।

इसलिए **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने सोचा कि बच्चों को अक्षरों से तो परिचित कराने की शुरुआत करनी ही चाहिए। उन्होंने विमंदित बच्चों को सिखाने की तकनीक का इस्तेमाल करते हुए अपनी सहायक अध्यापिका की मदद से कुछ अक्षर तैयार किये। कुछ अक्षर तो रंग–बिरंगे गत्ते से काटकर तैयार किये गये थे और कुछ खुरदरे रेगमाल को काट कर। वे बच्चों को गत्ते के अक्षर बोर्ड पर दिखातीं और अक्षर का नाम बताने के बजाय उसकी ध्वनि का अभ्यास करातीं। इसी तरह खुरदरे रेगमाल के अक्षर बच्चों को दे दिए जाते, जिन पर बच्चे बार–बार उंगली फिरा कर उनके आकार से ज्यादा–से–ज्यादा परिचित होते।

कुछ ही दिन में ज्यादातर बच्चे अक्षरों को ध्वनियों से पहचानने लगे। एक दिन **मरीया** ने देखा कि एक बच्चे ने एस, ओ, एफ, आई, और ए अक्षरों को क्रम में रख कर कहा, 'देखो, यह बन गया–सोफिया।' इसके बाद तो बच्चों में होड़ शुरू हो गयी। ज्यादातर बच्चे कटे हुए अक्षरों को आगे–पीछे रखकर सरल शब्द बनाने के खेल में मजा लेने लगे। व्याकरण के लिहाज से चाहे कई बार उनकी स्पेलिंग गलत होती थी, पर ध्वनियों के आधार पर गलतियां न के बराबर थीं। लेकिन लिखने की शुरुआत अब भी नहीं हुयी थी।

एक दिन, दिसम्बर के महीने में **मरीया** बच्चों को लेकर इमारत की छत पर खुली धूप में गयीं। वहां कई तरह के खेल खेलते हुए उन्होंने बच्चों को इमारत पर लगी चिमनी के बारे में समझाया और एक बच्चे को चॉक देकर उससे चिमनी बनाने के लिए कहा। बच्चे ने फर्श पर एक बड़ी–सी चिमनी आंक दी। **मरीया** उसकी तारीफ करने लगी कि बच्चे ने उत्तेजना और उत्साह से कांपते हुए कहा–मैं लिख भी सकता हूं। फिर उसने थरथराते हाथों से टेढ़े–मेढ़े अक्षरों में लिखा हाथ (इटालियन भाषा में *MANO*)। **मरीया** चकित हुयीं। उस बच्चे ने वैसे ही कुछ और शब्द फर्श पर लिखे। अचानक कुछ और बच्चे भी चॉक मांगने लगे। वे भी लिखना चाहते थे। **मरीया** ने चॉक बांट दी और कई बच्चे अपनी पहचानी हुयी ध्वनियों के अक्षरों के आकार छत के फर्श पर मांडने लगे। वे लिख रहे थे और उत्तेजना से चिल्ला रहे थे–मुझे लिखना आ गया, मुझे लिखना आ गया।

अगले कुछ दिनों में तो कक्षा के सारे ब्लैक बोर्ड, दीवारें, दरवाजे और फर्श बच्चों की लेखनी से भर गये, बच्चों के मां–बाप घरों में दीवारें और फर्श साफ करते–करते परेशान हो गये। लेखनी का यह स्वतःस्फूर्त प्रकट होना ऐसी बात थी जिसकी कल्पना स्वयं **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने भी नहीं की थी।
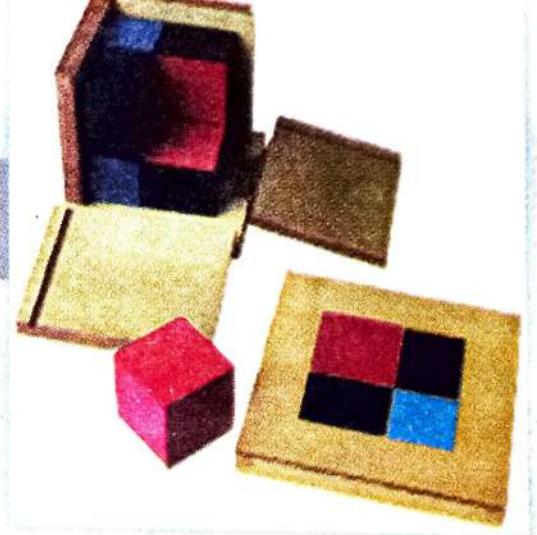
इस पूरे अनुभव के बाद इस पद्धति ने जड़ें जमानी शुरू कर दीं और आज दुनिया के किसी भी **मोन्तेस्सोरी स्कूल** में लगभग यही क्रम दोहराया जाता है। पहले आकारों से परिचय, हाथ में चॉक या पेंसिल पकड़ने और लकीरें व आकार बनाने का अभ्यास, गत्ते या धातु के कटे हुए अक्षरों और उनकी ध्वनियों की पहचान, खुरदरे गत्ते या स्टेन्सिल में उंगलियां फिरा कर अक्षरों के आकार से आत्मीयता आदि चरणों से गुजरने के बाद आमतौर पर सभी समूहों में, लगभग सभी बच्चों में एक साथ 'लेखन क्षमता प्रकट' हो जाती है। जो बच्चे पिछड़ते हैं, उन्हें विशेष प्रशिक्षित अध्यापक उनकी समस्या समझ कर दूसरों के साथ आने में मदद करते हैं।

खास बात यह थी कि **मरीया मोन्तेस्सोरी** की पहली क्लास के बच्चों को लग रहा था कि लिखना कोई ऐसी चीज है जो कद बढ़ने की तरह बड़े होकर उन्हें अपने–आप आ गयी है। एक बच्चा खुशी से बता रहा था–**मुझे लिखना आ गया। पर मुझे तो किसी ने सिखाया ही नहीं।**

संप्रेषण का जादू

कोई भी मान सकता है कि जो बच्चे लिखना सीख गये, वे पढ़ना तो सीख ही गये होंगे। लेकिन यहां भी एक अचरज छुपा था। **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने पाया कि अक्षर जोड़कर शब्द लिखने में सक्षम बच्चे सीधे–सीधे वाक्य पढ़कर समझ पाने में असमर्थ थे। वे अलग–अलग अक्षर, उनकी ध्वनियां और शब्द तो न केवल समझ पा रहे थे, बल्कि लिख भी पाते थे, लेकिन पूरे वाक्य का विन्यास और यह बात कि लिखना भी बात कहने का एक तरीका है, उनकी समझ के परे था।

उन बच्चों के लिए लिखना एक खेल था। एक गतिविधि, जो चुनौतीपूर्ण भी थी और मजेदार भी। अगले कुछ महीने पूरी तरह लिखने के खेल में बीत गये। बच्चों को जहां, जो मिलता, उस पर

लिखने लगते। हर चीज का, हर व्यक्ति का नाम लिखने की कोशिश करते। हर ध्वनि को, स्वर को समझने और उसे लिखने की कसरत में उलझे रहते।

कुछ दिन बाद बच्चों की पढ़ने की क्षमता जांचने के लिए **मरीया** ने ब्लैक बोर्ड पर एक वाक्य लिखा–**मेरे पास आओ**। कुछ नहीं हुआ। कई दिन तक **मरीया** बोर्ड पर ऐसे सरल वाक्य लिखती रहीं–'मुझे चुम्मी दो', 'मुझसे हाथ मिलाओ' आदि। लेकिन लिखने में मस्त बच्चे शायद यही समझते रहे कि **मरीया मोन्तेस्सोरी** भी उनके साथ खेल में शामिल हैं और अपने मजे के लिए बोर्ड पर लिख रही हैं।

बहुत दिनों बाद अचानक **मरीया** का लिखा वाक्य पढ़ कर एक नन्ही–सी लड़की उनके पास आई और बोर्ड देखकर झिझकती हुयी बोली, 'लो आ गयी आपके पास।' मानो इसी का सूत्र पकड़ कर एक लड़का दूसरा वाक्य पढ़ता हुआ आया और शर्माते हुए **मरीया** के गाल पर चुम्मी देकर भाग गया।

अचानक मानो कक्षा में पढ़ने का प्रादुर्भाव हो गया। सभी बच्चे जरा–सी देर में समझ गये कि पढ़ना–लिखना केवल खेल नहीं है। इससे बात कही जा सकती है। दूसरे की बात समझी जा सकती है। बिना बोले। संप्रेषण का अब तक मालूम एकमात्र जरिया बोलना ही सब–कुछ नहीं था। यह एक नई दुनिया उनके सामने खुल गयी थी। अक्षरों से, आकारों से, लाइनों से कहने, समझने, पूछने, बताने की दुनिया। कहना न होगा कि आने वाले कई दिन तक कक्षा में पढ़ने का खेल चलता रहा। **मरीया** या दूसरी अध्यापिका बोर्ड पर कोई निर्देश लिखते और बच्चे उसे पढ़ कर, समझ कर वह करते जो उसमें लिखा था।

अराजकता से स्वतंत्रता की ओर

बच्चों का यह समूह, जब यह केन्द्र शुरू हुआ तब, एकदम अराजक था। पूरी तरह अव्यवस्थित, जिसके सुधर पाने की कोई गुंजाइश नजर नहीं आती थी। यह संस्कारहीन, उपेक्षित बच्चों का झुंड था। मेमनों के रेवड़ की तरह, जिसमें हर मेमना अलग दिशा में भाग रहा हो।

लेकिन जैसे-जैसे बच्चे समूह में नयी-नयी बातें सीखते गये, नये-नये खेल खेलते गये, नये-नये अनुभव प्राप्त करते गये, वैसे-वैसे वे अपने-आप अनुशासित होते गये। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, किसी भी बच्चे को कोई सजा नहीं दी जाती थी। उन पर रोक-टोक नहीं थी। उन्हें चुनने की और गतिविधि की स्वतंत्रता थी। उनके आत्मसम्मान को पहचाना जाता था। और इस सबका नतीजा यह हुआ कि बच्चे खुद व्यवस्था बनाए रखना, दूसरों का ध्यान रखना, मिलजुल कर काम करना और सलीके से रहना सीखते चले गये।

वे ढंग से उत्साहपूर्वक आते। उपकरणों को लेते, उनसे काम करते। काम खत्म होने पर उन्हें वापस रखते। मेज-कुर्सियां व्यवस्थित करते। मिल कर नये-नये प्रयास करते। अगर किसी बच्चे से कुछ न हो, तो बाकी बच्चे आगे बढ़ कर उसकी मदद करने को तत्पर रहते। **सीखने, करने और निर्णय लेने की आजादी ने अराजक बच्चों को वास्तव में 'स्व-तंत्र' कर दिया था। एक ऐसा तंत्र, एक ऐसा अनुशासन, जो कहीं बाहर से आया हुआ नहीं था, बल्कि बच्चे के स्व-भाव से निस्सृत होता था। यह उन नैसर्गिक नियमों के तहत हो रहा था जो ऊपर से लागू किसी भी अनुशासन से ज्यादा उदात्त थे। और इस नैसर्गिक प्रस्फुटन की प्रक्रिया को मरीया मोन्तेस्सोरी ने वैसे ही खोजा था, जैसे गैलिलियो ने सौरमंडल की संरचना या न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण के नियम।** ❑

प्रचार और मान्यता

रोम के सान लोरेन्जो इलाके की उस बस्ती की इमारत में घटित **मरीया मोन्तेस्सोरी** के चमत्कार की ख्याति रातोंरात फैल गयी। एक अन्य इलाके में भी ऐसे ही एक बालगृह की शुरुआत की गयी और वहां भी ऐसे ही अप्रत्याशित नतीजे सामने आए। अगले ही साल से उस तंग बस्ती में शिक्षा को लेकर हुए इस अनूठे प्रयोग और इसके आश्चर्यजनक नतीजों को देखने के लिए दुनिया-भर से लोग आने लगे। इनमें अध्यापकों और चिकित्सकों के अलावा विभिन्न क्षेत्रों के विद्वान और प्रमुख व्यक्तित्व शामिल थे। बच्चों को सिखाने की **मोन्तेस्सोरी पद्धति** को देखने के बाद हर कोई बढ़-चढ़ कर इसकी तारीफ करता था।

अनेक अध्यापकों, संस्थाओं और समाजों ने **मरीया मोन्तेस्सोरी** से उनकी पद्धति और सिद्धांतों को समझा और विभिन्न इलाकों में **मोन्तेस्सोरी विधि** से शिक्षण के केन्द्रों की शुरुआत की। पारंपरिक पद्धति में अध्यापक एक 'बड़ा' और जानकार व्यक्ति होता था, बच्चे छोटे और नासमझ होते थे और अध्यापक अपना ज्ञान उन बच्चों को देता था। इसके लिए बच्चों को काबू में करना, उनमें भय और आदर की भावना जगाना और इसके लिए अक्सर डांट-फटकार या शारीरिक दंड देना भी अनिवार्य माना जाता था। लेकिन **इस नई पद्धति में बच्चा खुद सीखता था, बिना किसी दंड या पुरस्कार के, लालच के। इसलिए, क्योंकि सीखना बच्चे की स्वभावगत अनिवार्यता है। यहां बच्चे खुश थे। और आश्चर्य की बात यह थी कि न तो शरारत में उनका मन था, न अव्यवस्था फैलाने में।** पारंपरिक शिक्षा-विधि से परिचित सामान्यजन के लिए बच्चे के एक नए व्यक्तित्व से यह पहला परिचय था। मानो आज तक बच्चे को जैसा समझते आए, वह वैसा नहीं, बल्कि कुछ और ही तरह का एक 'नया बच्चा' था।

पहले रोम, और फिर इटली के दूसरे इलाकों में भी **मोन्तेस्सोरी स्कूल** खुलने लगे। इन स्कूलों के बारे में अनेक लेख पत्र–पत्रिकाओं में छपे। जल्दी ही इनकी चर्चा बाहर भी फैली और पूरे यूरोप, इंग्लैंड और अमरीका तक पत्र–पत्रिकाओं एवं अखबारों में **मरीया मोन्तेस्सोरी** और उनकी शिक्षण विधि के बारे में लेख प्रकाशित होने लगे। दो–तीन साल में इन स्कूलों के सिद्धांत, पद्धति और अनुभवों के बारे में कई अच्छी पुस्तकें भी अध्यापकों, समाजशास्त्रियों और शिक्षाविदों ने लिखीं।

इन स्कूलों या बाल–केन्द्रों की विशेषता यह थी कि यहां अनुशासन का स्रोत स्वतंत्रता था। बच्चों के ये समूह एक आदर्श समाज का प्रतिरूप थे, जिसमें व्यक्तित्व की स्वाधीनता से ही व्यवस्था जन्म ले रही थी। यहां बच्चे आत्मगौरव के साथ सक्षम होना सीख रहे थे। न केवल मानसिक और शारीरिक, बल्कि आत्मिक और आध्यात्मिक स्तर पर भी यह पद्धति बच्चे के उच्चतर विकास का स्वाभाविक सोपान थी। खास बात यह थी कि यह पद्धति किसी एक विचारधारा या धार्मिक संप्रदाय के चिंतन तक बंधी हुई नहीं थी, बल्कि सभी देशों, धर्मों, मान्यताओं, यहां तक कि परम भौतिकवाद की कसौटी पर भी पूरी तरह सफल सिद्ध हुई थी। एक समाजवादी विचारक की टिप्पणी थी कि **मोन्तेस्सोरी पद्धति से शिक्षा पाकर बड़े होना प्रत्येक मानव–शिशु का नैसर्गिक अधिकार है।**

स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व

1909 की गर्मियों में, इस पद्धति के विकास और अनुभवों पर **मरीया मोन्तेस्सोरी** की प्रथम पुस्तक **द मैथड ऑव साइन्टिफिक पेडेगोजी ऐज़ अप्लाइड टू इन्फैण्ट एजूकेशन एंड द**

चिल्ड्रन्स हाउसेज प्रकाशित हुयी। यह किताब दुनिया-भर में लोकप्रिय हुई। जल्दी ही अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद हुए और पूरे विश्व से **मोन्तेस्सोरी पद्धति** को लेकर सैकड़ों चिट्ठियां **मरीया मोन्तेस्सोरी** के पास आने लगीं। किसी में उनकी प्रशंसा होती, किसी में कुछ जिज्ञासा, तो किसी में कुछ समस्या। दुनिया-भर के अध्यापक मानो **मोन्तेस्सोरी पद्धति** को अपनाकर अपने अनुभव **मरीया** से बांटने के लिए उत्सुक थे। जिस प्रकार तेजी से **मोन्तेस्सोरी शिक्षण पद्धति** अचानक एक आंदोलन जैसा बनकर पूरी दुनिया में छा गयी, वह सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक स्वयं **मरीया मोन्तेस्सोरी** के लिए था।

यह उल्लेखनीय है कि **मरीया** कोई प्रशिक्षित शिक्षाविद् नहीं, बल्कि एक चिकित्सक थीं। विमंदित बच्चों के संदर्भ में उन्होंने शिक्षा-विधि का सामान्य परिचयात्मक अध्ययन किया था, लेकिन इस क्षेत्र में तब तक हो चुके व्यापक कार्यों से वे अपेक्षाकृत अपरिचित थीं। इसके बावजूद यह तथ्य है कि बच्चों के सीखने की प्रक्रिया के बारे में **मरीया मोन्तेस्सोरी** की खोज एकदम नई और अनूठी थी। उस समय तक शिक्षण विधि की मुख्य धारा में केन्द्रीय स्थिति **फ्रीडरिख फ्रॉबेल** की थी जो **किंडरगार्टन पद्धति** के जनक थे। **फ्रॉबेल** एक समाजशास्त्री थे जिन्होंने शिक्षा और समाज पर विधिपूर्वक कार्य किया था। वे **पेस्तालोजी** के शिष्य थे, जो स्वयं **रूसो** की विचारधारा से प्रभावित थे। **रूसो** के ज्ञानमीमांसीय चिंतन की जड़ें **हॉब्स** के विचारों में थीं।

लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** की परंपरा इससे काफी भिन्न किस्म की थी। उनके काम पर प्रभाव था, या यूं कहें कि उनकी प्रेरणा के उत्स छिपे थे तीन चिकित्सकों के कार्य में। **परेरा,** जिन्होंने गूंगे-बहरों को सिखाने के प्रयोग किये थे तथा **ईटार्ड** और **सेग्वें**, जिन्होंने मानसिक रूप से विमंदित लोगों पर काम किया था। कुल मिलाकर इस परम्परा में सामान्य बच्चों और शिक्षा-पद्धति पर कार्य करने

वाला एक भी व्यक्ति नहीं था। **परेरा, ईटार्ड** और **सेग्वें** का तो शिक्षा के क्षेत्र में नाम भी लोग **मरीया मोन्तेस्सोरी** की पुस्तकों और लेखों को पढ़ने के बाद जानने लगे थे।

मरीया मोन्तेस्सोरी ने एक बार उल्लेख किया था कि उनके सिद्धांत के बीज संवेदनाओं में थे जो विमंदित बच्चों को देखकर जागी थीं। बाद में कच्ची बस्ती के निराश्रित-से बच्चों की बेचारगी ने, और इस बात के एहसास ने उनके मन को झकझोरा था कि हर बच्चे का अपना एक आत्मसम्मान होता है। उनके पूर्ववर्ती चिकित्सकों **परेरा, ईटार्ड** और **सेग्वें** के कार्य की प्रेरणा भी मूक, बधिर या विमंदित जनों की त्रासद सामाजिक स्थिति ही थी। कुल मिलाकर वंचित, कमजोर, लाचार और आश्रितों को क्षमता, स्वाधीनता और आत्मसम्मान लौटाना इस विचार-परम्परा का आधार था। **मरीया** ने एक बार कहा था कि, **मोन्तेस्सोरी पद्धति की वैचारिक भावभूमि फ्रांस की क्रांति के आदर्श – स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व से उपजी है।**

निजी जीवन की उथल-पुथल

मरीया मोन्तेस्सोरी के बचपन, उनके जीवन-संघर्ष और बच्चों की शिक्षण-प्रक्रिया की खोज से जुड़े उनके अनुभवों के बारे में स्वयं **मरीया** ने, उनके सहयोगियों ने और उनके नजदीकी मित्रों ने कई जगह लिखा या बताया है। इसी के आधार पर उनके जीवनवृत्त की विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। लेकिन एक पक्ष ऐसा है जिसके बारे में लगभग सभी मौन हैं। यह है उनका निजी जीवन और प्रेम-प्रसंग।

इस बारे में कुल जानकारी इतनी है कि एक युवा चिकित्सक के रूप में **मरीया** की अपने सहयोगी चिकित्सक **डॉक्टर गिसेप्पी मोन्तेस्सानो** से घनिष्ठ आत्मीयता हो गयी थी। इस संबंध से

वे गर्भवती हुईं और एक पुत्र **मरीयो मोन्तेरस्सोरी** को जन्म दिया। **मरीया** और **डाक्टर मोन्तेस्सानो** का विवाह क्यों नहीं हुआ, यह किसी को स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं है। उनकी जीवनियों में भी यह पक्ष लगभग अनदेखा कर दिया गया है। एक संभावना तो यह है कि इटली के तत्कालीन वर्जना एवं सामंती मूल्यों वाले समाज में उनके परिवारों को यह संबंध स्वीकार्य नहीं रहा हो। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी के संधिकाल में यूरोप में भी संभ्रांत और कुलीन परिवारों में पारिवारिक प्रतिष्ठा का दबाव बहुत गहरा था और उसकी मर्यादा का उल्लंघन सामाजिक रूप से लगभग असंभव था। कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि अपने कार्य के प्रति समर्पण के कारण **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने अपने सहयोगी के साथ घनिष्ठता के बावजूद विवाह बंधन में न बंधने और एक विवाहित महिला की भूमिका के दायित्वों से स्वतंत्र रहने का फैसला किया हो सकता है।

बहरहाल, संभवत: दोनों की मांओं के प्रयासों से यह संबंध, **मरीया** का गर्भवती होना और पुत्र को जन्म देना, लंबे अरसे तक प्रकट नहीं किया गया। उनके पुत्र **मरीयो** का लालन–पालन रोम के निकट एक ग्रामीण परिवार में किया गया, जो **मरीया मोन्तेस्सोरी** के दूर के संबंधी थे। **मरीया** नियमित रूप से समय निकाल कर पुत्र के पास आती–जाती रहीं। **मरीयो** के पिता **डॉ. मोन्तेस्सानो** ने कुछ वर्ष बाद किसी और महिला से विवाह कर लिया और **मरीया** तथा **मरीयो** के जीवन से उनका सक्रिय संपर्क लगभग समाप्त–सा रहा। कई साल बाद जब **मरीया मोन्तेस्सोरी** काफी प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित और प्रौढ़ महिला के रूप में ख्यात हो चुकी थीं, उनका पुत्र उनके साथ रहने लगा था।

मरीया के जीवन के अंतिम कुछ दशकों में **मरीयो** लगातार मां के साथ रहे और **मोन्तेस्सोरी शिक्षण पद्धति** के विकास में उनका सहयोग करते रहे।
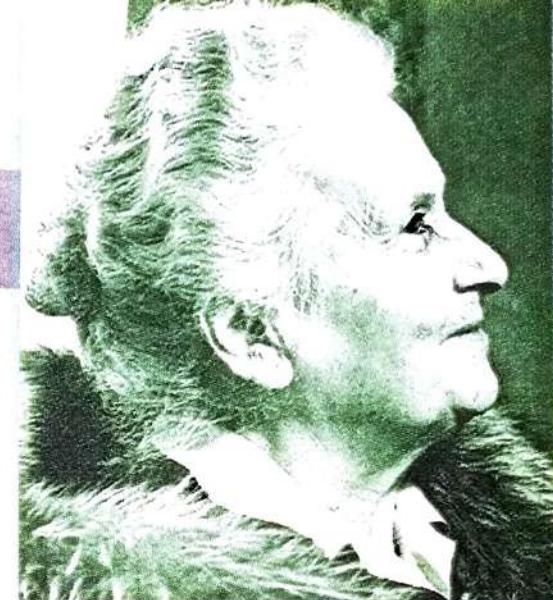
शिक्षा के प्रति पूर्ण समर्पण

1906 में स्थापित पहले **मोन्तेस्सोरी केन्द्र** के नतीजे 1908 तक सामने आने लगे थे और अगले दो–तीन साल में तो **मरीया मोन्तेस्सोरी** और उनकी **पद्धति** विश्वविख्यात हो गयी थी। इस दौरान जीवनयापन के लिए **मरीया** अपना पुराना क्रम ही अपनाए रहीं। बच्चों के केन्द्र की निदेशक होने के साथ–साथ अध्यापन और चिकित्सा ही उनकी आजीविका के मुख्य स्रोत बने रहे।

लेकिन जल्दी ही दुनिया–भर से आने वाले पत्रों, **मोन्तेस्सोरी स्कूलों** को देखने आने वाले अतिथियों और उनसे सीखना, अनुभव बांटना चाहने वाले लोगों की भीड़ इतनी बढ़ने लगी कि **मरीया** को सारे काम करते रहने के लिए समय कम पड़ने लगा। वे दुविधा में पड़ गयीं। चिकित्सा का कार्य उनका चुना हुआ, प्रिय कार्य था। तमाम मुसीबतों और सामाजिक बंधनों से लड़कर वे एक चिकित्सक बनने में सफल हो पायी थीं। विश्वविद्यालय में छात्रों और युवाओं के साथ एक चिकित्सक के रूप में अनुभव बांटना और उन्हें प्रेरणादायी शिक्षा देना भी ऐसा काम था जिसमें **मरीया** का मन गहराई से रमा हुआ था। उनकी आय का प्रमुख स्रोत भी यही दो कार्य थे।

लेकिन **मोन्तेस्सोरी शिक्षा विधि** की सफलता और तेजी से बढ़ी लोकप्रियता के बाद उन्हें यह एहसास भी था कि उनकी यह खोज मानव के सामाजिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। दुनिया–भर के **मोन्तेस्सोरी पद्धति** अपनाने को उत्सुक अध्यापकों और बच्चों की आने वाली पीढ़ियों के प्रति भी वे एक गहरा उत्तरदायित्व महसूस कर रही थीं। यह एक कार्य था, जो न केवल सामाजिक और नैतिक दृष्टि से सार्थक था, बल्कि जिसकी पूरी जिम्मेदारी खुद **मरीया** के ऊपर थी।

जब उन्होंने अपनी शिक्षण–पद्धति को ही पूरा समय देने का विचार शुरू किया तो ज्यादातर परिचितों और रिश्तेदारों ने उनसे जल्दबाजी न करने को कहा। लोगों का मानना था कि एक प्रयोगात्मक नई चीज के लिए इतना प्रतिष्ठित चिकित्सा का पेशा और विश्वविद्यालय का पद छोड़ना अक्लमंदी नहीं होगी। लेकिन हमेशा की तरह **मरीया** ने अपनी अंतर्प्रेरणा और गहरे आत्मविश्वास की राह चुनी और विश्वविद्यालय से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने पेशेवर चिकित्सकों की पंजिका से अपना नाम भी हटवा दिया। **मरीया** की मां **रेनील्डे** हमेशा की तरह इस समय में भी उनकी सम्बल बनीं। उन्हें अपनी बेटी के हर कदम पर गहरा विश्वास था।

हर बार की तरह इस बार भी **मरीया** का फैसला सही सिद्ध हुआ। चिकित्सक का कार्य और विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ने के बाद भी शिक्षकों के प्रशिक्षण और किताबों की रॉयल्टी से जीवन-भर **मरीया** की आय इतनी होती रही कि वे न केवल आराम से सम्मानजनक जीवनयापन करती रहीं, बल्कि अपने कार्य और शोध के लिए भी उनके पास धन की कभी कमी नहीं आई।

अभियान की शुरुआत

1914 में **मरीया मोन्तेस्सोरी** के सामने अमरीकी रईस **मेकक्लोर** ने प्रस्ताव रखा कि वे अमरीका आकर बस जाएं। लोकप्रिय पत्रिका 'मेकक्लोर्स मैग्जीन' के मालिक का प्रस्ताव था कि अमरीका में वे एक **मोन्तेस्सोरी स्कूल** की स्थापना करें। साथ ही मूक–बधिर तथा विमंदित बच्चों के लिए शिक्षा–केन्द्रों, पुस्तकालय आदि की भी योजना थी। इस परियोजना के लिए **मेकक्लोर** जितना चाहे, धन देने को तैयार थे। **मरीया** इस प्रस्ताव से काफी उत्साहित हुईं और अगले कुछ महीने अमरीका की इस प्रस्तावित परियोजना की विस्तृत रूपरेखा बनाने में जुटी रहीं।
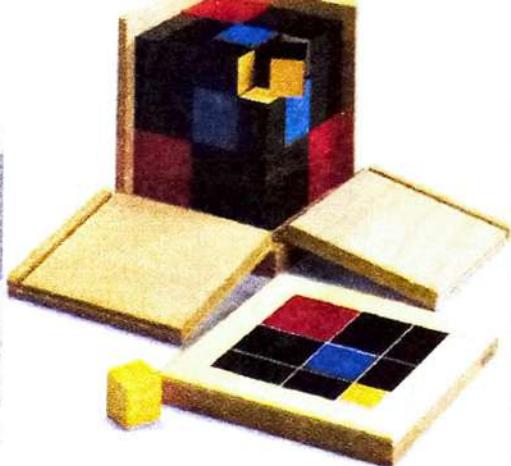
लेकिन अचानक एक बार फिर अपनी अंतर्प्रेरणा के वशीभूत उन्होंने अमरीका जाने और वहां बसने की योजना त्याग दी। उन्हें शायद लगा कि एक ही देश में, एक ही परियोजना तक सीमित हो जाना उनके दुनिया-भर में फैल रहे विचार के प्रति उनके कर्तव्य में बाधक होगा।

इसी वर्ष **मरीया मोन्तेस्सोरी** की माता **श्रीमती रेनील्डे मोन्तेस्सोरी** का निधन हो गया। अपने जीवन-संघर्ष में मां का सम्बल हर कदम पर पाने वाली **मरीया मोन्तेस्सोरी** काफी व्यथित हुईं और कई दिनों तक उन्होंने खाना तक नहीं खाया। आखिरकार समय के साथ उनका धीरज लौटने लगा और वे पुनः अपने काम में जुट गयीं।

अमरीका में बसने का प्रस्ताव तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया, लेकिन उसी वर्ष वे यात्रा पर अमरीका पहुंचीं। **मरीया मोन्तेस्सोरी** के कार्य की ख्याति अमरीका में फैल चुकी थी। वहां उनका भरपूर स्वागत हुआ। वे वहां **टामस अल्वा एडीसन**, जो उनके कार्य के प्रशंसक थे, के परिवार की अतिथि बनीं। अमरीका में **मोन्तेस्सोरी सोसायटी** का गठन किया गया जिसके अध्यक्ष का पदभार संभाला टेलीफोन के आविष्कारक और **बैल लैब्ज** के संस्थापक **अलेक्जेंडर ग्राहम बैल** ने। इसकी सचिव **मार्गरेट विल्सन** थीं, जो तत्कालीन अमरीकी राष्ट्रपति की पुत्री थीं। कार्नेगी हॉल में आयोजित उनके पहले व्याख्यान में पांच हजार लोग उपस्थित थे और जगह भर जाने के कारण हजारों लोगों को वापस भेजना पड़ा था। अमरीकी प्रवास के दौरान **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने विभिन्न स्थानों पर शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया और व्याख्यान दिये।

व्यापक क्षितिज

मरीया मोन्तेस्सोरी की पुस्तकें विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हुयीं। रूस, जर्मनी,

ऑस्ट्रिया, अमरीका, हॉलैंड, इटली, भारत और चीन तक में उनके सिद्धांतों के आधार पर 'बाल-केन्द्रों' की स्थापना होने लगी। इनमें से कई के बनवाने में स्वयं **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने सक्रिय सहयोग किया। इनकी इमारतें तक विशेष अनुपात में बनाई जाती थीं, जो एक सामान्य व्यक्ति के नहीं, बल्कि एक बच्चे के ज्यादा अनुकूल हों।

अगले कुछ वर्षों में **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने लगभग हर महाद्वीप के प्रमुख देशों की यात्राएं कीं। हर देश में उन्हें राजकीय स्वागत और सम्मान मिला और उनके प्रशिक्षण कार्यक्रमों और व्याख्यानों में भरपूर भीड़ जुटी।

लेकिन इस सबके साथ **मरीया** को लगने लगा कि उनकी खोज एक लंबी यात्रा का पहला कदम मात्र है। दुनिया उन्हें छोटे बच्चों को सिखाने की नई पद्धति के आविष्कारक के रूप में भरपूर मान्यता दे रही थी, लेकिन **मरीया मोन्तेस्सोरी** जानती थीं कि उनका काम केवल पहली सीढ़ी पर रुक नहीं सकता। उन्हें अनुमान था कि शिक्षा के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन ही अंततः श्रेष्ठ मानव-व्यक्तित्व और उसके जरिये एक आदर्श समाज की स्थापना का जरिया है। एक ऐसा समाज, जो संघर्षमुक्त हो और जहां हर व्यक्ति अपनी शक्तियों और संभावनाओं के सबसे उदात्त स्वरूप तक सहज विकास करने को स्वतंत्र हो। छोटे बच्चों को सिखाने की पद्धति इस लक्ष्य का द्वार खोलने की कुंजी मात्र थी।

इस काम में एक-दो साल नहीं, बल्कि कई पीढ़ियों का समय लग सकता है—यह आभास **मरीया मोन्तेस्सोरी** को स्पष्ट रूप से था। चूंकि उनका सिद्धांत उनकी खोज थी, इसलिए वे इसे आगे बढ़ाने की पूरी जिम्मेवारी भी अपनी ही महसूस करती थीं। इसी भावना के वशीभूत उन्होंने प्रशिक्षण

एवं व्याख्यानों के सिलसिले को सीमित किया। हजारों आमंत्रण ठुकराए और एक बार फिर अपने सिद्धांत और पद्धति के विकास के कार्य में जुट गयीं।

शांति का हथियार

अगले करीब चार दशकों तक विभिन्न देशों में, विभिन्न परिस्थितियों में, दो महायुद्धों, राजनीतिक उथल-पुथल के बीच **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** लगातार, एकनिष्ठ होकर अपने काम में जुटी रहीं। उनकी लिखी पुस्तकों के अलावा दुनिया-भर में दिये उनके अनगिनत व्याख्यानों में उनका कार्य फैला हुआ है। उनकी एक पुरानी सहयोगी का कहना है कि वे लगातार ऐसी विचार-ऊर्जा से अनुप्राणित रहती थीं कि उनके हर व्याख्यान में कोई नई बात, नया विचार या नया दृष्टिकोण मौजूद रहता था। एक ही विषय पर उनके दस व्याख्यान सुन चुके व्यक्ति को निश्चय ही उसी विषय पर उनका ग्यारहवां व्याख्यान सुनकर उस विषय के बारे में नई दृष्टि, नया विश्लेषण प्राप्त होता था। उनका कोई भी व्याख्यान लिखा हुआ, पुराना या रटा-रटाया नहीं होता था। वे लगातार सोचती रहती थीं और हर बार कोई नई बात सामने लाती थीं। दुनिया-भर के देशों में, दुभाषियों के जरिये दर्जनों भाषाओं में अनूदित उनके हजारों व्याख्यानों को एक जगह संपादित किये बिना उनकी वैचारिक महत्ता का पूरा अनुमान लगा पाना असंभव है।

छोटे बच्चों को सिखाने की पद्धति और बच्चों के सीखने के स्वभाव की खोज के बाद **मरीया मोन्तेस्सोरी** के शेष जीवन में अध्ययन और अनुसंधान की दो दिशाएं चलती रहीं। एक तो बच्चे के बड़े होने की दिशा में–किशोरावस्था तक और दूसरी उलटी तरफ यानी बच्चे के जन्म लेने की अवस्था तक। पहली दिशा जहां संस्कार, विचार, संस्कृति और सभ्यता के विकास का उस बिन्दु

तक संधान है जहां बच्चा लुप्त होकर एक सभ्य व्यक्ति, संस्कारित वयस्क बन जाता है, वहीं दूसरी दिशा का अनुसंधान सीधे बच्चे की अस्मिता, आत्मबोध और चेतनायुक्त जीवन के रहस्यों को समझने का प्रयास है।

इस पूरे काम को विभिन्न प्रकार की गतिविधियों के संदर्भ में देखा जा सकता है, जिनमें **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में व्यस्त रहीं। पहला, शिक्षकों को प्रशिक्षित करना। दूसरा, अपने सिद्धांतों को क्रमिक रूप से शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर लागू करना। इसके लिए पहले तो **संवेदनशीलता के विभिन्न कालों** का अध्ययन शामिल था, जिसमें इन कालों के संदर्भ में सांस्कृतिक प्रभावों का अध्ययन किया जाता था। इसके बाद तरुणावस्था और किशोरावस्था की मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक प्रवृत्तियों के आधार पर माध्यमिक शिक्षा की पद्धति तथा स्कूलों के विभिन्न स्तरों के लिए शिक्षण सामग्री विकसित की जाती थी। **मरीया मोन्तेस्सोरी** के कार्य का तीसरा पक्ष था साढ़े तीन साल से छोटे, नवजात अवस्था तक के, बच्चे की मनःस्थिति का अध्ययन, जिसके निष्कर्ष उनकी चर्चित पुस्तकों—**सीक्रेट ऑव चाइल्डहुड** और **द एब्ज़ार्बेन्ट माइन्ड** में वर्णित हैं। चौथा और अत्यंत महत्त्वपूर्ण कार्य था—एक 'सामान्य बच्चे' में छिपी रचनात्मक सामाजिक संभावनाओं का अध्ययन। **उनकी मान्यता थी कि 'सच्ची शिक्षा, शांति का हथियार है।'** ❑

मौलिक सिद्धांत और पद्धति

डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी का सिद्धांत या कि उनकी खोज मूलरूप से यह थी कि मानव-शिशु का दिमाग जन्म के समय किसी साफ पट्टी की तरह नहीं होता जिसमें जगत् के प्रभावों के आधार पर उसके व्यक्तित्व और प्रवृत्तियों का विकास हो। मानव-शिशु के मन की बनावट में विकास की प्रवृत्ति सहज और जैविक प्रवृत्ति होती है। इसी प्रवृत्ति के कारण बच्चे के व्यक्तित्व और क्षमता का अनिवार्य विकास होता है।

इस प्रक्रिया के अनेक चरण होते हैं। एक तितली, अंडे से विकसित तितली बनने की यात्रा में लार्वा, प्यूपा और फिर पूर्ण विकसित कीट बनने की प्रक्रिया से गुजरती है। हर चरण में उसके रूप, आकार और गुणों में संपूर्ण परिवर्तन होता है। हर विकसित रूप अपने पूर्ववर्ती रूप से पूर्णत: भिन्न होता है। लगभग ऐसा ही मानव के साथ है। लेकिन फर्क यह है कि मानव में परिवर्तन भौतिक एवं शारीरिक रूप से उतना स्पष्ट नहीं होता जितना मानसिक रूप से। एक शिशु से वयस्क होने की प्रक्रिया में जिन पूर्ण परिवर्तनों के दौर से मानव गुजरता है, उन्हें **मरीया मोन्तेस्सोरी 'संवेदनशील काल'** कहती हैं। यह काल-खंड प्राकृतिक एवं जैविक है और हर एक ऐसे काल के दौरान बालक के व्यक्तित्व में किन्हीं विशेष प्रवृत्तियों का समावेश होता जाता है जो अंतत: उसके वयस्क व्यक्तित्व के कारकों के रूप में प्रतिफलित होता है।

हर **संवेदनशील काल** में किन्हीं विशेष कार्यों की ओर बच्चे की सहज रुचि होती है और वह अपने परिवेश में उन्हीं कार्यों की ओर सहज रूप से आकर्षित होता है। उसके जरिए अपने व्यक्तित्व और क्षमता की उच्चतम संभावनाओं तक बढ़ने का प्रयास बच्चे के लिए नैसर्गिक अनिवार्यता है।

इसलिए अगर बच्चे की उम्र और उसके **संवेदनशील काल** के अनुरूप तैयार किया गया परिवेश उसे दिया जाये तो वह अंत:प्रेरित उत्साह और प्रसन्नता के साथ उसमें सक्रिय होकर

अपना विकास स्वयं करता चला जाता है। इसमें वयस्कों को—अध्यापकों या अभिभावकों को—कोई प्रोत्साहन, दंड का भय या प्रलोभन बच्चों को देने की कोई भूमिका नहीं रह जाती। शिक्षक का काम केवल सही परिवेश प्रदान करने और उस परिवेश में बच्चे को स्वतंत्र गतिविधि की छूट देने तक सीमित रह जाता है।

अपने अनुभवों के आधार पर **मरीया मोन्तेस्सोरी** ने एक बच्चे के विकासक्रम में अनेक ऐसे **संवेदनशील काल** निर्धारित किये थे। इनमें एक से छह वर्ष तक की आयु के **संवेदनशील कालों** के बारे में उनकी धारणा सामान्यतः विश्व—भर के शिक्षाशास्त्री और मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। **मोन्तेस्सोरी स्कूलों** के अनुभवों और अनुसंधानों से उनकी अवधारणा सभी देशों और संस्कृतियों में निरंतर पुष्ट हुई है। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में लगातार व्याख्यानों और प्रशिक्षण कार्यक्रमों में व्यस्त रहने के बावजूद **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** छह से अठारह वर्ष की आयु के संवेदनशील कालों के बारे में अनुसंधान करती रहीं और इनकी एक प्रस्तावना भी उन्होंने तैयार की थी। यद्यपि शिक्षा—प्रक्रिया के क्षेत्र में बाद के अनेक अनुभवों, अनुसंधानों और नई खोजों में पाया गया कि बड़े बच्चों में यह प्रक्रिया उतनी नैसर्गिक नहीं होती जितनी छह साल तक के बच्चों में। बड़े बच्चों के सीखने की प्रवृत्तियों में देश, काल, लिंगभेद, संस्कृति और आर्थिक परिवेश के सापेक्ष अनेक भिन्नताएं देखने को मिलती हैं साथ ही पारिवारिक परिवेश तथा बड़ों के व्यवहार की भी अहम भूमिक होती है। स्कूली परिवेश भी उनके व्यवहार को काफी प्रभावित करता है। अतः किशोरावस्था और तरुणावस्था के शिक्षण—सिद्धांत वैसे सर्वसम्मत और सार्वभौमिक नहीं हैं जैसे छोटे बच्चों के। फिर भी एक मुक्त, संभावनाशील और सक्षम व्यक्तित्व के विकास का आधारभूत काल जन्म से छह वर्ष तक की अवस्था ही है और इसको लेकर **मरीया मोन्तेस्सोरी** के सिद्धांत का महत्त्व निर्विवाद है।

संवेदनशील काल मरीया मोन्तेस्सोरी के अनुसार इस प्रकार हैं :

1. **शारीरिक गतिविधियों पर नियंत्रण, पकड़ना, छूना, मुड़ना, संतुलन रखना, घिसटना और चलना (जन्म से एक साल की अवस्था तक)।**
2. **शब्दों का प्रयोग, अर्थहीन ध्वनियों को शब्दों, वाक्यों और बढ़ती हुई शब्दावली में बदलना (जन्म से छह साल तक)।**
3. **छोटी चीजों और तफसील के प्रति** आकर्षण (एक से चार साल तक)।
4. **व्यवस्था के प्रति संवेदनशीलता**, जिसमें बच्चा सब–कुछ ज्यों–का–त्यों चाहता है। उदाहरण के लिए एक बड़ा दरवाजे के पीछे छिप कर बच्चे को आवाज देता है। बच्चा थोड़ी देर में उसे ढूंढ लेता है। दोनों हंसते हैं, खुश होते हैं। फिर बच्चा छुपना चाहता है। वह वहीं, उसी दरवाजे के पीछे जाकर छिप जाता है। जब बड़े का नंबर आता है और बड़ा सोफे के पीछे छिपता है तो बच्चा खुश नहीं होता। वह चाहता है कि बड़ा वहीं, उसी दरवाजे के पीछे छिपा मिले। तभी उसका खेल सही ढंग से पूरा होगा (दो से चार साल तक)।
5. **संगीत के प्रति संवेदनशीलता।** लय, ताल और सुरों के उतार–चढ़ाव के प्रति आकर्षण। सहज रूप से गाना, गुनगुनाना, ताल देना, पांव थिरकाना (दो से छह साल तक)।
6. **सलीके के व्यवहार।** अभिवादन और तौर–तरीके सीखने की प्रवृत्ति। बड़ों को देखकर वैसा ही 'सही' व्यवहार करने की कोशिश (दो से छह साल तक)।
7. **इंद्रियों की अनुभूति के प्रति संवेदनशीलता।** रंग, आकार, स्वाद, ध्वनि, स्पर्श, वजन और गंध के फर्क को समझना, महसूस करना और इनमें भेद कर सकना (दो से छह साल तक)।

8. लिखना। कागज, पेंसिल, चॉक या रंगों से अक्षर और अंक बनाने का उत्साह (तीन से चार साल तक)।
9. पढ़ना। अक्षरों से बने शब्दों के आकार को एक ध्वनि और अर्थ के रूप में पहचानना और पढ़ कर उसका संदेश समझने का प्रयास (तीन से पांच साल तक)।
10. दूरी, विस्तार और दिशा की समझ, जिसमें बच्चा घर, स्कूल, पार्क आदि का नक्शा समझने लगता है। एक से दूसरी जगह आ–जा सकता है और रास्ता खोजने जैसी जटिल पहेलियां सुलझाने की कोशिश करता है (चार से छह साल)।
11. गणित के प्रति संवेदनशीलता, जिसमें बच्चा, गिनना, संख्या, परिमाण और जोड़ने–घटाने जैसे काम ठोस वस्तुओं के संदर्भ में करना और संख्या तथा उसके प्रतीक अंक का संबंध समझना शुरू कर देता है (चार से छह वर्ष)।

मोन्तेस्सोरी स्कूल

एक आदर्श **मोन्तेस्सोरी स्कूल** का परिवेश ऐसा होता है कि वहां बच्चा अपने चारों ओर ऐसी सामग्री पाता है जिससे उसके संवेदनशील काल की प्रवृत्तियां तुष्ट हो सकें। वहां अध्यापक उस सामग्री के प्रयोग में बच्चों का सहायक होता है। वह सिखाता नहीं, बल्कि 'सीखने में साथ देता' है। अध्यापक ऐसी स्वाभाविक गतिविधियां या 'खेल' करवाता रहता है जिनके जरिये बच्चा अपने संवेदनशील काल के अनुरूप सक्रिय रहे और नई–नई चीजें खुद ही सीखता चला जाए। **मोन्तेस्सोरी स्कूल में एक जानकार वयस्क के रूप में शिक्षक नहीं, बल्कि सीखने को प्रवृत्त बच्चा सारी गतिविधि के केन्द्र में होता है।**
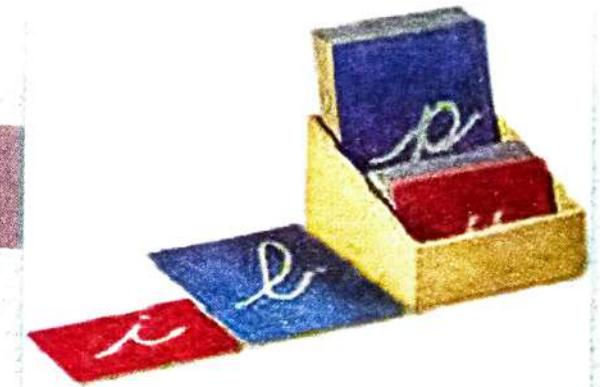
ऐसे स्कूल का नक्शा, फर्नीचर, शिक्षण–सामग्री आदि से लेकर दीवारों का रंग, ब्लैक बोर्ड की ऊंचाई, टॉयलेट में कमोड और वाशबेसिन के आकार और ऊंचाई, झूले, खिड़की–दरवाजे आदि सब–कुछ ऐसे होते हैं कि छोटा बच्चा बिना बड़ों की मदद के उनका उपयोग कर सके और खुद को या किसी और बच्चे को अनजाने में चोट न पहुंचाए। बच्चा स्कूल के कमरों या कॉरिडोर आदि में भटके नहीं और माहौल में आसानी से घुल–मिल सके।

स्कूल में पाठ्यक्रम और शिक्षक का तैयार किया हुआ कार्यक्रम ज्यों–का–त्यों लागू नहीं होता, बल्कि हर बच्चे के विकास पर नजर रखी जा सकती है जहां एक बच्चा कुछ कर रहा है तो दूसरा कुछ और। पर एक कुशल प्रशिक्षित **मोन्तेस्सोरी शिक्षक** हर बच्चे के विकास पर नजर रखते हुए मानो नेपथ्य से, परोक्ष रूप में, पूरे समूह की गतिविधियों को नियंत्रित दिशा देता रहता है।

बच्चे को किताबों से लगभग नहीं के बराबर पढ़ाया जाता है। ज्यादातर चीजें बच्चा ठोस सामग्री और उसके इस्तेमाल के जरिये सीखता है। जैसे त्रिकोण–गोल–चौकोर आदि आकार किताब में बनी आकृतियों से नहीं, बल्कि लकड़ी या प्लास्टिक के टुकड़ों से और रोजमर्रा की वस्तुओं के जरिये समझाए जाते हैं। बच्चा जानता है कि घड़ी और सिक्का गोल हैं, रूमाल चौकोर और समोसा तिकोना आदि। इसी प्रकार बच्चा रंग, स्पर्श–भेद (चिकना, खुरदरा आदि), दूरी और विस्तार (दूर–पास आदि), समय (पहले, बाद, जल्दी, देर), आकार (बड़ा, छोटा) आदि भी चित्रों या किताबों से नहीं, वास्तविक अनुभव से सीखता है। 'क' की ध्वनि सीखने और पहचानने से पहले बच्चा इस आकृति को कबूतर, कटहल, कागज आदि अनेक वस्तुओं से संबद्ध करना सीख जाता है और तब 'क' की ध्वनि और अक्षर के आकार का संबंध उसके लिए एक सायास सीखी हुई नहीं, बल्कि स्वाभाविक वस्तु हो जाती है।

बच्चा गतिविधि चुनने के लिए स्वतंत्र होता है। **मोन्तेस्सोरी सिद्धांत** के अनुसार जिस प्रकार शरीर की आवश्यकता के अनुसार बच्चे को अलग–अलग पदार्थ खाने की इच्छा होती है, उसी प्रकार मानसिक विकास की नैसर्गिक जरूरतों के मुताबिक बच्चा तरह–तरह की गतिविधियों की ओर आकर्षित होता है। बच्चे अपने मन से सामग्री चुनते हैं, उसे बार–बार इस्तेमाल करते हैं और उस पर पूरा नियंत्रण पा लेने, अर्थात् उसमें निहित कौशल या जानकारी पूरी सीख लेने पर उसे छोड़ कर दूसरी ओर आकर्षित होते हैं। **मोन्तेस्सोरी शिक्षकों** का इस स्थिति को मापने का पैमाना बहुत सरल लेकिन रोचक है। जब कोई बच्चा एक गतिविधि किसी दूसरे बच्चे को समझाने या सिखाने की कोशिश कर रहा हो तो यह मानना चाहिए कि वह स्वयं उसको पूरा सीख चुका है।

मोन्तेस्सोरी सिद्धांत के अनुसार **एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व अर्जित करना बच्चे की नैसर्गिक आकांक्षा होती है। इसी के लिए वह 'स्व' के विकास की ओर स्वप्रेरित होकर अपनी गतिविधि चुनता है और उससे सीखता है।** इसके लिए बच्चे को प्रलोभन देना या पारितोषिक देना बच्चे के स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास में बाधक सिद्ध होता है। **जो बच्चे लालच में काम करने, काम पूरा करने के बाद इनाम पाने या काम में गलती करने पर सजा या डांट के माहौल में विकसित होते हैं वे पराधीन व्यक्तित्व का विकास करते हैं। वे ऐसे वयस्क बनते हैं जिन्हें सपने देखने, आकांक्षा पालने और उन्हें पूरा करने के लिए भी हमेशा किसी के आदेश, निर्देश या अनुमति की जरूरत होती है।**

यूं तो **मोन्तेस्सोरी कक्षा** में बच्चे को गतिविधि की पूरी स्वतंत्रता होती है, लेकिन इस बात का भी पूरा ध्यान रखा जाता है कि बच्चा अपने समूह के नियमों के अनुसार ही गतिविधि में संलग्न रहे। यदि वह पूरे समूह की गतिविधि में बाधक बनता है या दूसरों को परेशान करने लगता है तो उसे
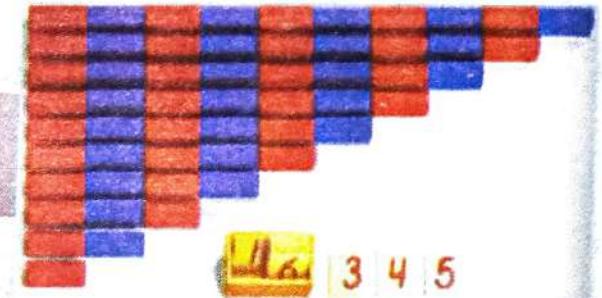
कुशलतापूर्वक सही दिशा में निर्देशित कर दिया जाता है। बच्चा जो भी करता है, उसमें एक स्वतःस्फूर्त प्रेरणा होती है। वह किसी निर्देश का पालन करने या शाबासी पाने के लिए काम नहीं करता, बल्कि सारे समूह के साथ विभिन्न गतिविधियों को संपन्न करने में सक्षम होने की इच्छा के साथ काम करता है। ऐसे में उसके अनुशासन का स्रोत उसकी अपनी इच्छा होती है, न कि कोई बाहर से लादा गया नियम।

इन समूहों में बच्चों की आयु में भी अकसर पर्याप्त भिन्नता होती है। तीन से पांच साल की आयु के बच्चे एक साथ मिलकर एक परिवार की तरह भांति–भांति के कार्य करते हैं। जिन बच्चों का विकास होता जाता है, उन्हें शिक्षक अलग समूह बनाकर उनके संवेदनशील काल के अनुरूप नये कामों में प्रवृत्त करता है। ऐसे मिले–जुले समूहों में थोड़े बड़े या अधिक सीखे हुए बच्चे खुद–ब–खुद छोटे और नए बच्चों की मदद करने को वैसे ही प्रेरित होते हैं जैसे किसी परिवार या आत्मीय समुदाय में।

बच्चों के समूहों में तुलना करने और एक को दूसरे से बेहतर बताने से बचा जाता है। **मोन्तेस्सोरी पद्धति** में इम्तिहान और नंबर देने की कोई व्यवस्था नहीं होती। हर बच्चा अपने में महत्त्वपूर्ण होता है और उसे उसी के सीखने की क्षमता के अनुसार सिखाया जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि बच्चों में कोई आपसी होड़ या मुकाबला नहीं पनप पाता और सामान्यतः सभी बच्चे आपस में गहरे प्रेमभाव और आत्मीयता के साथ विकसित होते हैं। उनमें सहयोग और साझे की प्रवृत्ति सहज ही जड़ें जमा लेती है जो एक वयस्क के रूप में एक अच्छी टीम–भावना और परस्पर सम्मान की प्रवृत्ति को उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बनाती है।

मोन्तेस्सोरी पद्धति का लक्ष्य बच्चे के मन में तमाम कौशल और जानकारी भर देना मात्र नहीं है, एक सक्रिय, आत्मीय समूह में बच्चा अपनी इच्छाएं, कल्पनाएं, भावनाएं और आशंकाएं भी

खुलकर व्यक्त कर सकता है और अंततः यह उसके अंतरतम के स्तर पर एक उदात्त व्यक्तित्व के विकास का कारक बनता है। इन स्कूलों में सायास ऐसा वातावरण विकसित किया जाता है जो आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान, शांतिपूर्ण सहअस्तित्व और चुने हुए कार्य को श्रेष्ठतम तरीके से पूरा करने की इच्छा को पनपने का मौका देता है।

इन स्कूलों में सार्वभौमिक मानवीय मूल्य, जैसे कि आत्मसम्मान, दूसरे के भिन्न व्यक्तित्व का स्वीकार एवं सम्मान, करुणा, सद्भावना, शांति, सहानुभूति, जिम्मेदारी और जो सही लगे उसे स्पष्ट कहने और स्वीकारने का साहस आदि के विकास को केन्द्र में रखा जाता है। **मोन्तेस्सोरी पद्धति** के पाठ्यक्रम अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक जैसे हैं और इनमें जाति, रंग, धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीयता के भेदों को समन्वित रखने का प्रयास बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। कोशिश यह होती है कि कक्षा में बच्चों के समूह में विभिन्न धर्मों, जातियों, पारिवारिक पृष्ठभूमियों और संभव हो तो राष्ट्रीयताओं वाले बच्चे शामिल रहें और सबके बीच सद्भाव, सम्मान और दूसरे के बारे में सही जानकारी की भावना विकसित हो, ताकि बड़े होने पर वे संपूर्ण मानवीय समाज के करुणामय सहअस्तित्व के वाहक बनें, न कि सामाजिक संघर्षों के।

इन बच्चों की गतिविधियों में कक्षा के अलावा स्कूल के बाहर होने वाले कार्यों को भी शामिल किया जाता है। बच्चों के समूहों को विभिन्न कार्यस्थलों, आवासीय क्षेत्रों, संस्थानों, संग्रहालयों, चिकित्सालयों आदि में ले जाकर वहां के कार्य की जानकारी दी जाती है और कई कार्यों में शामिल होने को भी प्रोत्साहन दिया जाता है। ऐसा, उनका सामुदायिक दृष्टिकोण व्यापक बनाने और सामाजिक उत्तरदायित्वों तथा भूमिकाओं को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया जाता है। ❑

अंतिम दशक

1939 के बाद यूरोप के देशों और इंग्लैंड में **मरीया मोन्तेस्सोरी** का नाम समाचारों और चर्चाओं से लगभग गायब–सा हो गया। कई बार तो बौद्धिक वर्ग में चर्चा छिड़ने पर लोग अचरज व्यक्त करते कि, 'अच्छा **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** अभी जीवित हैं?' लेकिन असल में अपने अध्ययन और प्रशिक्षण का एक महत्त्वपूर्ण लंबा अरसा इस दौरान उन्होंने तत्कालीन भारत और चीन में बिताया था।
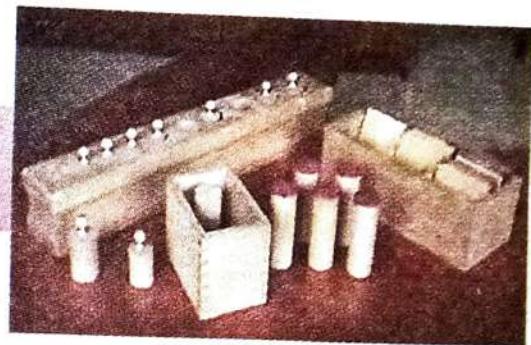
वे 1939 में प्रशिक्षण देने मद्रास (अब चैन्नई) पहुंचीं। इस कोर्स में भारत–भर से आए करीब तीन सौ शिक्षक शामिल थे। इसी बीच द्वितीय महायुद्ध छिड़ गया। एक इटालियन नागरिक होने के नाते ब्रिटिश साम्राज्य में उनकी स्थिति एक दुश्मन देश के नागरिक की थी और उस समय भारत में मौजूद इटली, जर्मनी आदि के सभी नागरिकों को तत्काल देश छोड़ना जरूरी था, लेकिन **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** के कार्य, प्रतिष्ठा और मानवीय मूल्यों के प्रति उनकी निष्ठा का ऐसा सम्मान था कि उनके लिए ब्रिटिश शासन ने विशेष अनुमति पत्र जारी किया कि वे जब तक चाहें, ब्रिटिश साम्राज्य के किसी भी हिस्से में रह सकती हैं।

विश्वयुद्ध के दौरान **मरीया मोन्तेस्सोरी** ज्यादातर तत्कालीन भारत में ही रहीं और अनेक स्थानों–अहमदाबाद, अड्यार, कोडईकनाल और कश्मीर आदि में शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करती रहीं। कश्मीर में वहां के तत्कालीन महाराजा की वे अतिथि थीं और वहां उन्होंने **मोन्तेस्सोरी स्कूल** शुरू करने में सहयोग दिया। 1944 में उन्होंने श्रीलंका की यात्रा की और शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया। भारत प्रवास के दौरान वे **महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर** और **जवाहरलाल नेहरू** से भी मिलीं।

विश्वयुद्ध समाप्त होने पर 1946 में **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** यूरोप लौट गयीं। वे वहां इंग्लैंड गयी और प्रशिक्षण कार्य शुरू किया। 1947 में इटली की सरकार ने उन्हें इटली लौटकर अपनी संस्था **ऑपेरा मोन्तेस्सोरी** पुनः शुरू करने का न्यौता दिया। इस संस्था को फासिस्ट शासनकाल के दौरान बंद कर दिया गया था। 1948 में वे पुनः भारत आयीं और पुणे के अड्यार में प्रशिक्षण कोर्स संचालित किये। ग्वालियर महाराजा के अनुरोध पर बारह साल तक के बच्चों के लिए एक आदर्श स्कूल की स्थापना की। 1949 में उन्होंने पाकिस्तान की यात्रा की।

1925 में स्थापित **इंटरनेशनल मोन्तेस्सोरी कांग्रेस** के अधिवेशनों की वे अध्यक्षता करती रहीं। हेलसिंकी (1925), नीस (1932), एम्सटर्डम (1933), रोम (1934), ऑक्सफोर्ड (1936), कोपेनहेगन (1937) और एडिनबरा (1937) में इन अधिवेशनों के क्रम में द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान बाधा आई और अगला अधिवेशन 1951 में लंदन में आयोजित किया गया, जिसकी **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** ने अध्यक्षता की।

1949 में उन्हें यूनेस्को को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया गया। इसी वर्ष फ्रांस सरकार ने **लीजन ऑव ऑनर** सम्मान उन्हें प्रदान किया।

6 मई, 1952 के दिन हॉलेंड में **नूर्दव्यिक-ऑन-सी** नामक स्थान पर 81 वर्ष की अवस्था में **डॉ. मरीया मोन्तेस्सोरी** का अचानक निधन हो गया। उन्हें उसी स्थान पर दफनाया गया है। ❑

एक अनजान बच्चा

❑

संजीव मिश्र

मरीया मोन्तेस्सोरी की यह जीवनी संजीव ने हमारे आग्रह पर लिखी थी। मूलतया वे कवि थे—लेखनी से भी और हृदय से भी। कवि हृदय संजीव का मन बालकों में बहुत रमता था और वे बहुत बार घंटों बालकों के साथ अपने किसी आध्यात्मिक सुख के लिए बिता दिया करते थे। बच्चे उनकी कविता में भी किलकते–पुलकते थे। इस जीवनी के अंत में प्रस्तुत है संजीव की ऐसी ही एक प्रतिनिधि कविता।—सं.

धीमी बरसात के बाद
भीगी हुई हवा को
सूँघते हुए बच्चे की
आँखें चमक रही थीं

फुटपाथ की
गीली, जमी हुई मिट्टी पर
माचिस की तीली से
टेढ़ी मेढ़ी लकीरें खींचते
और फुटपाथ को
उन अर्थहीन आकृतियों से
भरा हुआ देखकर
वह बहुत खुश था।
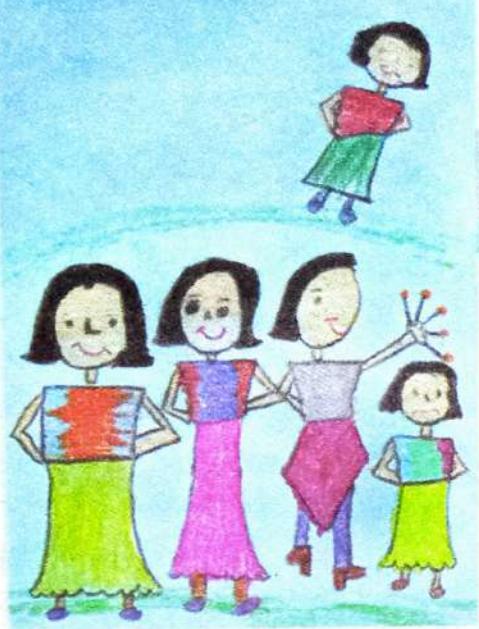
न जाने क्या कुछ
उस गीली मिट्टी पर
वह रच डालना चाहता था
उत्साह से उमगते हुए

मैंने तब चुपचाप रच लिया था
एक अनजान बच्चा,
चमकती आँखें, छलकता उत्साह
और हलकी साफ मुस्कान लिये—
बहुत दिनों से
सूनी और सूखी पड़ी
अपनी रेत पर
धीमी बरसात के बाद।

1984
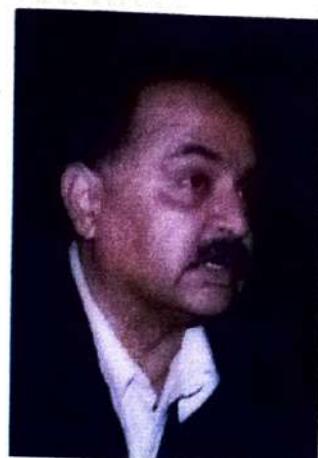
संजीव मिश्र

9 फरवरी, 1961—28 जनवरी, 2007

संजीव मिश्र मूलतः कवि थे। कला प्रेमी थे। साहित्यानुरागी थे। संगीत भी उन्हें बहुत सुहाता था। स्वभावतः स्वयं भी सुर में जीना पसन्द करते थे। बेसुरी बातों से, बेसुरी जिन्दगी से उन्हें काफी वितृष्णा थी।

संजीव सृजनधर्मी थे। जिस कर्म में सृजन न हो वह उन्हें सुहाता नहीं था। यही वजह थी कि पत्रकारिता को वे करते और छोड़ते रहे। राजस्थान पत्रिका, नवभारत टाइम्स एवं भास्कर जैसे दैनिक अखबारों से वे सम्बद्ध रहे मगर कहीं टिके नहीं।

संजीव का मन केवल कविता में टिका। वहीं वे रमते रहे। उनका जीवन सप्रयुक्त शब्द की तलाश का जीवन रहा। शब्द की अनुगूँज और लय-ताल का संधान संजीव की जीवन-साधना थी। संजीव मितभाषी थे तो केवल इसलिए कि उनकी जीवन-साधना शब्द को पीने और पचाने की साधना थी। वे अपने अन्तर्मौन में अपने होने की संज्ञा तलाशते रहे।

संजीव 1961 में लखनऊ में जनमे थे और फिर राजस्थान आ बसे थे। सन् 1987 में अञ्जू ढड्ढा से उनका विवाह हुआ। अञ्जू भी कविता लिखती हैं और अध्यापन करती हैं। वैवाहिक-जीवन में भी साहित्यानुराग सधता रहा, बहुआयामी सृजन के साथ।

दीर्घायु लेकर नहीं आये थे संजीव। 28 जनवरी 2007 को लखनऊ में ही उनका आकस्मिक निधन हुआ।